॥ श्रीः ॥

[illegible]

[illegible] ।

श्रीवैष्णव[illegible]का अतिअपूर्वग्रन्थ

जिसको

श्रीअयोध्यावासी कनकभवन श्रीलालसाहबजीके
समीपवर्ती श्रीसरयूदासजीने बनाया ।

[illegible]

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन,
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालयमें
मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९७२, शक १८३७.

[illegible]क खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाड़ी ७ वीं गली [illegible], निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने [illegible]लिये प्रकाशित किया.

॥ श्रीः ॥

श्रीवैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह-

भाषाटीकासहित ।



श्रीवैष्णवसिद्धान्तका अतिअपूर्वग्रन्थ

जिसको

श्रीअयोध्यावासी कनकभवन श्रीलालसाहबजीके

समीपवर्ती श्रीसरयूदासजीने बनाया ।

वही

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन,

निज "**श्रीवेङ्कटेश्वर**" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९७२, शक १८३७.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाड़ी ७ वीं गली खम्बाटा लैन, निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया.

भूमिका ।



श्रीवैष्णवधर्मानुरागी समस्त सज्जनोंसे सहर्ष निवेदन है इस ग्रन्थमें श्रीवैष्णव सिद्धान्त, गुरुशिष्य लक्षण, दीक्षामाहात्म्य, पंच संस्कार, सप्तमुद्रा, शंखचक्र धनुर्बाण तिलक कण्ठी सब प्रकारके माला मंत्रके निर्णय तथा जपलक्षण श्रीगुरु माहात्म्य, रहस्यत्रय सिद्धान्त, दीक्षाकाल तिथियोंका निर्णय और चारों संप्रदायोंके आचार्य्योंके अवतार होना वैष्णवके लक्षण, महत्त्व, शैव शाक्त आदि मतोंका निर्णय तथा चारों वर्णोंकी उत्पत्ति, वर्णाश्रमके धर्म, नास्तिकोंके खण्डन और यज्ञोपवीतके लक्षण देवता धारण करनेकी विधि चारों युगोंके भिन्न-भिन्न धर्म सृष्टिका क्रम तथा ८४ लक्षयोनियोंके प्रमाण मनुष्यशरीरके श्रेष्ठतादि अनेक विषयोंका ४९९ श्लोकोंमें भलीभांति वर्णन है इससे सब सज्जनोंके देखने ही योग्य है ।

श्रीअयोध्या कनकभवनस्थ-

श्रीलालसाहबजीका

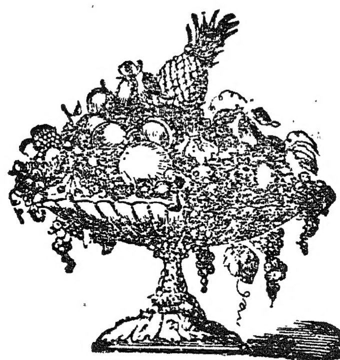
समीपवर्ती—**श्रीसरयूदास.**

॥ श्रीः ॥

अथ श्रीवैष्णवकुलभूषणसारसंग्रहानुक्रमणिका ।



इति वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रहानुक्रमणिका समाप्ता ।

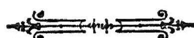


श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अथ श्रीवैष्णवकुलभूषण-

सारसंग्रहो भाषाटीकासहितः

प्रारभ्यते ।



श्रीरामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् ॥
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनःपुनः ॥ १ ॥

अर्थ–श्रीरामजीको, श्रीलक्ष्मणजीको, श्रीसीताजीको, श्रीभरतजीको, श्रीशत्रुघ्नजीको, श्रीसुग्रीवजीको, वायुपुत्र श्रीहनूमान्‌जीको वार वार मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

(श्रीगुरुस्वरूपवर्णनम्)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ॥
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥
अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया ॥
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ॥
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४ ॥

अर्थ–गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु महादेव हैं. गुरुदेव ही परब्रह्म श्रीरामस्वरूप हैं, उस श्रीगुरुके लिये नमस्कार है ॥ २ ॥ अज्ञानरूप घोर अंधकारका ज्ञानरूप शलाकया (काड़ी)से चक्षु (ज्ञान वैराग्य-रूप नेत्र) खोलदिया है उस श्रीगुरुके अर्थ नमस्कार है ॥ ३ ॥ अखंडमण्डलाकार (ज्योतिस्वरूप) परब्रह्म जिन करके सब चराचर

व्याप्त है उस परब्रह्मके पदको जिनकी कृपासे देखा उस श्रीगुरुके वास्ते नमस्कार है ॥ ४ ॥

श्लोक–सर्वश्रुतिशिरोरत्नं विराजितपदांबुजम् ॥
वेदांतांबुजसूर्य्याय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ५ ॥
यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ॥
स एव सर्वसम्पत्तिस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ६ ॥

अर्थ–जिनके चरणद्वय संपूर्ण वेदोंकी शिरोमणि होकर विराजित हैं वेदान्तरूप कमलके प्रकाशित करनेवाले उन सूर्यरूप श्रीगुरुके निमित्त नमस्कार है ॥ ५ ॥ जिनके स्मरण मात्र हीसे स्वयं ज्ञान उत्पन्न होता है सोही संपूर्ण ऐश्वर्य्यरूप श्रीगुरु स्वामीजीके अर्थ नमस्कार है ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे श्रीगुरुस्वामीजीको बार बार नमस्कार करके शिष्य बोला–

भगवन् श्रोतुमिच्छामि गुरुशिष्यस्य लक्षणम् ॥
मंत्रदीक्षासुमाहात्म्यं वद वेदविदां वर ॥ ७ ॥

अर्थ–हे भगवन्! गुरु और शिष्यका लक्षण और सुंदर मंत्रदीक्षाका माहात्म्य आप कहिये, मेरेको सुननेकी इच्छा है आप कैसे हैं कि वेद वेदान्त जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ गुरुरुवाच ॥

शृणु तात प्रवक्ष्यामि वेदानां सारमुत्तमम् ॥
यं ज्ञात्वा सर्वदुःखेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥८॥

अर्थ–हे तात! संपूर्ण वेदोंका सार सिद्धान्तको हम कहते हैं, जिनको जानकर सर्व दुःखोंसे तुम छूट जाओगे इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥८॥ हे शिष्य! गुरु शिष्यके लक्षण सर्वत्र शास्त्रमें प्रसिद्ध हैं सुनो–

शांतो दान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेषवान् ॥
शुद्धाचारः सुप्रसिद्धः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् ॥९॥

आश्रमी ध्याननिष्ठश्च मंत्रतन्त्रविचक्षणः ॥
निग्रहाऽनुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते ॥ १० ॥

अर्थ–शांत हो,उदार हो,दयावान् हो, कुलीन हो और नम्रभाव हो, शुद्ध हो, याने क्रिया कर्म करके युक्त हो, कानें, खोढे, कूबडे, लूले, लंगडे, अंगहीन अथवा अधिकांग न हो (शुद्धाचार) आचरण जिनके शुद्ध हों पापी अधर्मी न हो, सर्वत्र प्रसिद्ध हो अर्थात् विद्वान् हो, जिनको सब कोई जानता हो और पवित्राचरण हो, पण्डित हो, चतुर हो, बुद्धिमान् हो ॥ ९ ॥ आश्रमी नाम वर्णाश्रम करके युक्त हो, भाव. शिखासूत्रसे रहित पतित सर्वभक्षी न हो, भगवद्ध्यानमें जिनकी निष्ठा हो और मंत्र तंत्र शास्त्रमें प्रवीण हो और निग्रह नाम (शापादिक) दण्ड देनेमें और अनुग्रह (दयादिक) करनेमें समर्थ हो इसको गुरु कहते हैं ॥ १० ॥ यह सब लक्षण जिनमें नहीं हैं सो गुरु नहीं है पुनः हारीतधर्मशास्त्रे–

सत्संप्रदायसंयुक्तं मंत्ररत्नार्थकोविदम् ॥
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नं वेदवेदांगपारगम् ॥ ११ ॥
शासितारं सदाचारैः सर्वधर्मविदां वरम् ॥
महाभागवतं विप्रं सदाचारनिषेविणम् ॥ १२ ॥
आलोक्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च वैष्णवः ॥
तदर्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य इतीरितः ॥ १३ ॥

अर्थ–संतसंप्रदाय अर्थात् वैष्णवसंप्रदायके आचार्य हो यथा 'विष्णुमंत्रोपदेष्टुर्हि सदाचारस्य लक्षणम्' इत्यादि प्रमाणसे विष्णुमंत्रके जो उपदेशक हैं निश्चयपूर्वक सो ही सद् आचार्यका लक्षण है और कैसा हो कि, मंत्ररत्नजो २५ अक्षरवाला (मंत्रद्वय) है तिसके अर्थका पूर्णज्ञानी हो, पण्डित हो, ज्ञानवैराग्ययुक्त हो, वेदवेदांगका पारंगत

हो, सबके ऊपर धर्मके आज्ञापूर्वक प्रचारक हो तथा सदाचार विचार-युक्त हो और संपूर्ण धर्मके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ हो महाभागवत (वैष्णव) ब्राह्मण हो जो सदाचारका सेवन करनेवाला हो और सब शास्त्र पुराणादिको देखकर उसीके अर्थानुकूल आचरण करे उसको आचार्य्य कहते हैं दूसरा नहीं ॥११ ॥–१३ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! भागवत ब्राह्मण किसको कहते हैं (उत्तर) हे शिष्य! नारदपंच-रात्रमें ऐसा कहा है—

महाभागवतं तत्र आर्चार्यं वरयेत्सुधीः ॥
अर्थपंचकतत्त्वज्ञाः पंचसंस्कारसंस्कृताः ॥
आकारत्रयसंपन्नास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ १४ ॥

अर्थ–मूर्तिप्रतिष्ठाप्रकरणमें लिखा है कि, शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, जैन, बौद्ध, नास्तिक आदि भगवत् मूर्तिकी प्रतिष्ठा न करें यदि करें तोर, हानि हो, उस मूर्तिकी चरणोदक प्रसाद न लेवें नमस्कारभी न करना चाहिये, दोष है इससे बुद्धिमान् लोग अर्चाविषयमें महा-भागवत ब्राह्मणको ही वरे अब महाभागवतके लक्षण कहते हैं कि, अर्थपंचक जो है पर १ व्यूह २ विभव ३ अंतर्य्यामी ४ आर्चा-विग्रह इन पाचों स्वरूपकी जो यथार्थ अर्थ जाने और पंचसंस्कार जो नाम १ पुण्ड्र २ शंखचक्र ३ मंत्र ४ याग ५ इन पंच संस्कारोंकरके जे संस्कृत (युक्त) हैं और आकारत्रय अर्थात् अनन्यसाधनत्व १ दासत्व २ अनन्य भोग्यत्व ३ इनकरके जो युक्त हैं वह महा उत्तम भागवत हैं इसके सिवाय जो रहस्यत्रय जाने तत्त्वत्रय जाने वह वैष्णव गुरु-करनेयोग्य है ॥ १४ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! गुरु शब्दका अर्थ क्या है सो कृपा करके कहिये (उत्तर) हे शिष्य! गुरु शब्दका अर्थ इसप्रकारसे कहा है ॥ यथा प्रमाण कठवल्ल्युपनिषादि ॥

गुशब्दस्त्वंधकारश्च रुशब्दस्तन्निरोधकः ॥
अंधकारनिरोधत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥ १५ ॥

अर्थ-गुशब्द अन्धकारवाचक है और रुशब्द अन्धकारका निरोध करनेवाला है अर्थात् अज्ञानरूप अन्धकारका जो निवारण करनेवाला हो याने ज्ञान देनेवाला हो उसको गुरु कहते हैं ॥ १५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! शिष्यका लक्षण क्या है ? सो कृपाकर कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! शिष्यका लक्षण शास्त्रमें ऐसा कहा है यथा-

शांतो विनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान्धारणे क्षमः ॥
समर्थश्च कुलीनश्च प्राज्ञः सच्चरितो धनी ॥ १६ ॥
एवमादिगुणैर्युक्तः शिष्यो भवति नान्यथा ॥

अर्थ-शान्त हो, नम्र स्वभाववाला हो अन्तःकरण शुद्ध हो याने छल, कपट, राग, द्वेष, कामक्रोधसे रहित हो श्रद्धावाला हो क्षमा धारणमें समर्थ हो, कुलीन हो, बुद्धिमान् हो, सतोगुणी चरित करके युक्त हो, याने चालचलन सबही ठीक हो एवं आदि गुण करके युक्त हो उसीको शिष्य करना चाहिये, अन्यको नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अच्छे विद्वान् सब शास्त्रोंका जाननेवाला और संपूर्ण लक्षणों करके युक्त अवैष्णव ब्राह्मण गुरु होसकता है, कि नहीं ? सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! अवैष्णव गुरु कभी भी नहीं होसकता । ऐसा वैष्णव-शास्त्रका सिद्धांत है ।

यथा-यामोत्तरखण्डे ॥

सहस्रशाखाध्यायी च सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥
कुले महति जातोपि न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥१७॥
यस्तु मन्त्रद्वयं सम्यक्-अध्यापयति वैष्णवः ॥
स आचार्यस्तु विज्ञेयो भवबन्धविनाशकः ॥१८॥

अर्थ-जो सहस्र-शाखा सामवेदका पढ़ा हो और सब यज्ञोंमें दीक्षित हो याने सब प्रकारके यज्ञ सविधि किये हो और उत्तम कुलमें जन्म लिया हो तौभी अवैष्णव गुरु नहीं हो सकता है ॥ १७ ॥ जो

वैष्णव मंत्रद्वयको सब प्रकारसे अध्ययन याने जप करताहो सोई आचार्य्य संसारके याने जन्ममरणके नाश करनेवाला जानना चाहिये दूसरा नहीं ॥ १८ ॥ पुनः स्कान्दे–

षट्शास्त्री भवेद्विप्रः वेदवेदांगपारगः ॥
अवैष्णवो गुरुर्न स्याद्वैष्णवः श्वपचो गुरुः ॥१९॥

अर्थ–षट्शास्त्री ब्राह्मण हो और वेदवेदांगका पारंगत हो तौभी अवैष्णव गुरु नहीं करना चाहिये वैष्णव नीचभी गुरु करना चाहिये ॥ १९ ॥ हे शिष्य ! इसी प्रकारकी बहुतही प्रमाणें हैं (प्रश्न) हे स्वामीजी ! किस प्रकारके गुरु करना योग्य है सो विशेष करके कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! श्रीनारदगीतामें भगवान्‌ने ऐसा कहाहै यथा–

विरक्तो वैष्णवश्चैव मद्भक्तिरसिकस्तथा ॥
अलुब्धो ज्ञानसंपन्नः कर्त्तव्यश्च गुरुर्नृणाम् ॥ २० ॥
यज्ञे दानोपवीते च विवाहे श्राद्धतीर्थके ॥
षट्स्थानेषु गुरुर्विप्रो मंत्रदीक्षासु वैष्णवः ॥ २१ ॥

अर्थ–विरक्त वैष्णव मेरी भक्तिका रस जाननेवाला अलोभी याने लोभसे रहित और ज्ञानयुक्त गुरु मनुष्योंको करना चाहिये और यज्ञमें दानदेनेमें यज्ञोपवीतमें विवाहमें श्राद्धकर्ममें तीर्थमें इन छे स्थानोंमें गृहस्थ ब्राह्मणको गुरु करना चाहिये और दीक्षागुरु अर्थात् मंत्रोपदेशक गुरु वैष्णव विरक्त (त्यागी) गुरु होना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

पाषाणस्य यथा नौका न तरति न तारयेत् ॥
तथा गृही गुरुश्चैव न तरति न तारयेत् ॥ २२ ॥
यथा काष्ठस्य नौकातः नद्याःसंतरणं भवेत् ॥
तथैव वैष्णवदीक्षातः संसारात्तरणं भवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ जैसे पत्थरकी नौका न स्वयं गंगादि नदी पार होसक्तीहै और न किसी यात्रीहीको पार करसकती है तैसेही गृहस्थ गुरु जो कि माया मोहमें फँसा है न आप संसारसागरसे पार होसकता है और न किसी दूसरेको ही पार करसकताहै ॥ इससे गृहस्थ गुरु नहीं करना चाहिये, विरक्त गुरु करना चाहिये। तिसपर दृष्टान्तदेतेहैं कि, जैसे काष्ठकी नौकासे नदीपार होजातेहैं तैसेही विरक्त वैष्णव गुरुके दीक्षा लेनेसे सुखपूर्वक संसार-सागर पार हो जातेहैं इसपर दृष्टांत है एक राजाने एक पंडितजीसे कहा, कि, आप हमको वो सप्ताह श्रीमद्भागवतकी श्रवण कराइये कि जैसे, शुकदेव स्वामीने राजा परीक्षितजीको सुनाके सात रोजमें उद्धार कियारहा॥ पंडितजीने लोभके वशमें होकर सप्ताह सुनाया परन्तु कुछ असर न किया। तब राजा और पंडितजी दोनों मिलके एक साधु महात्मासे निवेदन किया। महात्माजीने शिष्यको आज्ञा दिया कि, राजा और पंडितको दो स्तंभमें अलग २ बाँध दो। शिष्यने बांधदिया। अब साधु कहते हैं, कि पंडितजी! आप राजाको खोलदीजिये, पंडितजी बोले कि हम तो स्वयं बंधे पड़ेहैं राजा साहेबको किसप्रकारसे खोलें तब साधु महात्माजी राजासे बोले कि आपही पंडितजीको बन्धनसे खोलदीजिये सुनके राजा साहेब बोले हम कैसे खोलें; हम तो आपही बँधेहैं साधुमहात्मा बोले यही तुह्मारे प्रश्नका उत्तर है तुम दोनों स्वयं मायामोहमें फँसे पड़ेहो कैसे उद्धार हो और श्रीशुकदेवस्वामी तो (शुको मुक्तो वामदेवो वै इति श्रुतिः) इस श्रुतिप्रमाणसे मुक्तरूप रहे इसलिये राजा परीक्षित्जीका उद्धार किया ऐसेही सिद्धांत इहांभी जानना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥

पंकेनैव हि पंकस्य निवृत्तिर्न यथा भवेत् ॥
तथा संसारनिवृत्तिरविरक्तात्कदाचन ॥ २४ ॥

अन्यदेवस्य दीक्षातो मुक्तिर्नैव प्रजायते ॥
वैष्णवीं च विना दीक्षां मुक्तिर्नैव च नैव च ॥२५॥

अर्थ-जैसे पंक (कीच) से धोनेसे कीचकी निवृत्ति नहीं होती है तैसेही संसारकी निवृत्ति याने जन्ममरणसे रहित होना गृहस्थ गुरु करनेसे नहीं होती है ॥ अन्य देवताके मंत्र लेनेसे मोक्ष नहीं होसक्ता है बार बार कहते हैं कि, विना वैष्णव गुरु किये गति नहीं होसक्ती है ॥ २४ ॥ २५ ॥ पुनः-

अवैष्णवोपदिष्टेन मंत्रेण न परा गतिः ॥
अतश्च विधिना सम्यग्वैष्णवाद् ग्राहयेन्मनुम्॥२६॥
महाकुलप्रसूतोपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥२७॥

अर्थ-अवैष्णवके उपदेश मंत्रकरके मुक्ति नहीं होती है इससे विधिपूर्वक वैष्णवसे मंत्र लेना चाहिये ॥ उत्तम ब्राह्मणकुलमें जन्म लिया होय और सर्व यज्ञोंमें विधिपूर्वक दीक्षित होय तथा सहस्र-शाखाओंके सहित सामवेद अध्ययन कियाहोय तौभी अवैष्णव (शैव शाक्त) गुरु नहीं करना चाहिये हे शिष्य ! इसी प्रकारसे बहुत प्रमाण हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ और भी श्रीकृष्णचन्द्रजीने श्रीनारदजीसे कहा है यथा ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्डके ८३ वें अध्यायमें प्रसिद्ध है ।

विष्णुमंत्रो यापकश्च स एव वैष्णवो द्विजः ॥
ब्राह्मणो वैष्णवः प्राज्ञो न तस्मात्परः पुमान्॥२८॥
वेदोक्तो वा पुराणोक्तस्तंत्रोक्तो वा मनुः शुचिः॥
विचारतो गृहीत्वा तं शैवः शाक्तश्च वैष्णवः ॥२९॥

अर्थ-विष्णुमंत्रके जो उपासक हैं सोई ब्राह्मण वैष्णव हैं दूसरे नहीं और वैष्णव ब्राह्मणसे श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥ मंत्र तीन प्रकारके हैं एक वैदिक दूसरा तांत्रिक तीसरा पौराणिक हैं तिसमें वैदिक हो अथवा पुराणोक्त हो चाहे तांत्रोक्त हो तीनों मंत्र पवित्र हैं उनको विचारपूर्वक शैव शाक्त वैष्णव ग्रहण करे भाव विना विचार किये न लेवे ॥ २८ ॥ २९ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! इन तीनों मंत्रोंमें कौन मंत्र किसको लेना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! शास्त्रमें ऐसा कहा है यथा—

वैदिकं ब्राह्मणानां स्याद्राज्ञां वैदिकतांत्रिके ॥
तांत्रिकं वैश्यशूद्राणां सर्वेषां तांत्रिकं तु वा ॥ ३० ॥

अर्थ-ब्राह्मणोंको वैदिकमंत्र चाहिये, क्षत्रियको वैदिक, तांत्रिक, दोनों चाहिये, वैश्यको, शूद्रको, तांत्रिक मंत्र चाहिये। अथवा सबको तांत्रिकही मंत्र लेना चाहिये ॥ ३० ॥ पुनः ब्रह्मवैवर्ते—

गुरुवक्राद्विष्णुमंत्रो यस्य कर्णे विशत्ययम् ॥
तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३१ ॥
मंत्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥
भित्त्वा ब्रह्माण्डमखिलं यास्यत्येव हरेः पदम् ३२ ॥

अर्थ-गुरुके मुखसें विष्णुमंत्र जिनके कानोंमें प्रवेश करता है उस वैष्णवको महापवित्र पंडितलोग कहते हैं ॥ मंत्रग्रहणमात्रहीमें मनुष्य जीवन्मुक्त होजाते हैं अंतमें कोटि २ ब्रह्माण्डको भेदन करके सर्वोपरि श्रीहरिके पद वैकुंठको चलेजाते हैं फिर लौटकर नहीं आते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पुनः—

पूर्वान्सप्त परान्सप्त सप्त मातामहादिकान् ॥
सोदरानुद्धरेद्भक्तस्तत्प्रसूंस्तत्प्रसूंस्तथा ॥ ३३ ॥

तेजीयांसं गुरुं दृष्ट्वा सर्वत्र रक्षितुं क्षमम् ॥
करोति मंत्रग्रहणं तस्माद्धूयाद्विचक्षणः ॥ ३४ ॥

अर्थ-वह मंत्र लेनेवाला वैष्णव, ७पुर्षा प्रथमके, ७पुर्षा पीछेके, ७पीढी मामा नानाके और भ्राताओंके भी भ्राता पुत्रोंको तथा पुत्रके पुत्र (नाती) को सबको उद्धार करते हैं अच्छे तेजस्वी गुरुको देखकर बार बार जो कि सर्वत्र शिष्यकी रक्षा करनेमें समर्थ हों तिनसे मंत्र-दीक्षा लेनी चाहिये तब क्या होता है कि, (मंत्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्) इत्यादि शास्त्रके सिद्धांतसे वह पुरुष विलक्षण होजाते हैं भाव भगवद्रूप होजाते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ पुनः-

वयोहीनाज्ज्ञानहीनाद्विद्याहीनात्तथैव च ॥
जातिहीनाद्गुरोर्मंत्रं गृह्णीयान्न कदाचन ॥ ३५ ॥
शास्त्रार्थं चाक्षतं मंत्रं न गृह्णीयात्कदाचन ॥
मूर्खादाश्रमहीनाच्च पितुः संन्यासिनस्तथा ॥३६॥

अर्थ-कम अवस्थावालेसे, ज्ञानहीनसे, विद्याहीनसे गुरु मन्त्र कभी नहीं लेना चाहिये । शास्त्रार्थ (वादविवाद) के वास्ते अथवा जिस मन्त्रमें व मन्त्रार्थमें भ्रम हो और अक्षतं नाम सर्वत्रसे हानिकारक खण्डित मन्त्र न लेना मूर्खसे अधम हीनसे पितासे, संन्यासीसे, मन्त्र नहीं लेना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

रोगिणो वंशहीनाच्च भार्याहीनात्तथैव च ॥
मंत्रक्षिप्तात्तथा मंत्रं न गृह्णीयात्कदाचन ॥ ३७ ॥
विष्णुमंत्रं न गृह्णीयाद्विष्णुभक्तिविहीनतः ॥
न च शैवान्न शाक्ताच्च गृह्णीयाद्वैष्णवाद्विजात्॥३८॥

अर्थ-रोगीसे, वंशहीनसे और जिनको स्त्री नहीं है इन सबसे मन्त्र न लेना चाहिये (मंत्रक्षिप्तात्) अर्थात् एकसे मंत्र लेकर पुनः उस

मंत्रको त्याग कर दूसरे गुरुसे मंत्र लिया हो उनसे मंत्रोपदेश नहीं लेना चाहिये इहांपर वैष्णवीमंत्रको जो त्याग करके दूसरे वैष्णवसे मंत्र लिया हो उनसे लेना निषेध है और शैवशाक्तादिको तो प्रथम गुरुको छोडकर वैष्णवसे मंत्र लेना शास्त्रप्रमाण है सो आगे कहेंगे ॥ और जो विष्णुभक्तिसे रहित हैं उनसे भी मंत्र न लेना और शैवशाक्तसे भी विष्णुमंत्र न लेना विष्णुमन्त्र केवल वैष्णव ब्राह्मणसे ही लेना उचित है॥ ३७॥ ३८॥ अब किनसे मंत्र लेनेसे क्या होता है सो कहते हैं॥

वयोहीनात्तथाऽल्पायुर्ज्ञानहीनादपण्डितः ॥
विद्याहीनाद्भवेन्मूढो जातिहीनात्क्षयो भवेत्॥ ३९॥
मूर्खान्मूर्खो भवेत्सद्यो दुःखी स्वाऽऽश्रमहीनतः ॥
यशोहानिः पितुश्चैव मृत्युः संन्यासिनस्तथा॥ ४०॥
रोगिणो व्याधियुक्तश्च निर्वंशो वंशहीनतः ॥
भार्याहीनोपि स्त्रीहीनान्मंत्रक्षिप्तात्तुतत्समः ॥ ४१॥

अर्थ-कम अवस्था वालेसे मंत्र लेवे तो अल्पायु हो, ज्ञानहीनसे मंत्र लेवे तो ज्ञानहीन हो, विद्याहीनसे लेवे तो मूर्ख हो, जातिहीनसे लेवे तो नाश हो, मूर्खसे लेवे तो मूर्ख हो, आश्रमहीनसे मंत्र लेवे तो शीघ्रही दुःखी हो, पितासे मन्त्र लेवे तो हानि हो, संन्यासीसे लेवे तो मृत्यु हो, रोगीसे लेवे तो रोगी हो, और वंशहीनसे मंत्र लेवे तो निर्वंश हो, स्त्रीहीनसे लेवे तो स्त्रीहीन हो, मंत्र त्यागनेवालेसे लेवे तो तैसेही होय ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

विष्णुभक्तिविहीनाच्च भक्तिहीनो भवेन्नरः ॥
शैवाच्छाक्ताद्गृहीत्वा च हरौ भक्तिर्न वर्द्धते ॥ ४२ ॥
उदासीनाद्दुराचाराान्न गृह्णीयान्मनुं सुधीः ॥
दैवाद्यदि हि गृह्णीयाद्धनहीनो भवेद्ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

अर्थ-विष्णुभक्तिहीनसे मंत्र लेवे तो भक्तिहीन हो और शैव, शाक्तसे जो रामतारकमन्त्र लेते हैं तो विष्णुमें भक्ति नहीं बढती है, इससे शैवशाक्तसे वैष्णवी मंत्र न लेवे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे शिष्य ! ऐसे ही नारदपंचरात्रमेंभी कहा है यथा-

गृह्णाति भक्तो भक्त्या च कृष्णमंत्रं च वैष्णवात् ॥
अवैष्णवाद्गृहीत्वा च हरिभक्तिर्न वर्धते ॥ ४४ ॥
यस्मिन्देहे लभेन्मंत्रं वैष्णवो वैष्णवादपि ॥
पूर्वकर्माश्रितं देहं त्यक्त्वा स पार्षदो भवेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ-भक्तिश्रद्धावाले मनुष्य भक्तिसे श्रीवैष्णवसे मंत्र लेते हैं अवैष्णवसे नहीं लेते हैं । जो अवैष्णव याने शैवशाक्तसे राम कृष्ण विष्णु नारायणादि मंत्र लेते हैं तो भगवत्में प्रेमभक्ति नहीं होती है । जिस शरीरमें वैष्णव भक्तको वैष्णव गरुसे विष्णुमन्त्रकी प्राप्ति होती है उसी समयमें पूर्वकर्माश्रित शरीरको त्यागकर पार्षद होजाते हैं॥४४॥ ॥ ४५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! राममन्त्र लेनेसे दूसरा जन्म होजाता है सो किस शास्त्रमें कहा है ? (उत्तर) हे शिष्य ! वैष्णवोंका जो मुख्य शास्त्र है श्रीनारदपंचरात्र उसमें कहा है ।

कृष्णमंत्रोपदेशेन माया दूरमुपागता ॥
कृपया गुरुदेवस्य द्वितीयं जन्म कथ्यते ॥ ४६ ॥
पितृगोत्री यथा कन्या स्वामिगोत्रेण गोत्रिका ॥
श्रीकृष्णभक्तिमात्रेणाऽच्युतगोत्रेण गोत्रिका ॥४७॥

अर्थ-श्रीकृष्णमन्त्र लेनेसे माया महारानी दूरको चली जाती है और गुरुस्वामीजीके कृपासे दूसरा जन्म होजाता है कैसे होते हैं सो दिखाते हैं जैसे पिता गोत्रकी कन्या विवाह होनेसे:स्वामी अर्थात् पति गोत्रमें कही जाती है तैसेही भगवद्भक्ति करनेसे ही अच्युत गोत्री याने भगवान्के शुक्लवर्ण अच्युतगोत्रमें मिलजाते हैं भाव वर्णाश्रमसे रहित

होजाते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अच्युतगोत्रका और भी कहीं प्रमाण है (उत्तर) हे शिष्य ! श्रीभागवतके ४ स्कंधके २१ अध्यायमें अच्युतगोत्रका प्रमाण है यथा-

सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् ॥
अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥ ४८ ॥

अर्थ-पृथुमहाराजने सातो द्वीपको स्ववश करालिया एक ब्राह्मण-कुलको और अच्युतगोत्रवाले वैष्णवको छोड बांकी सबको दण्ड दिया (प्रश्न) हे स्वामीजी ! कोई कोई विद्वान्लोग इहांपर ज्ञानी परमहंसको अच्युतगोत्री अर्थ करते हैं सो क्यों (उत्तर) हे शिष्य ! अर्थ करनेवालेको क्या कोई करेगा जो चाहै सो कहे परंतु अर्थ मुख्य वही है, इसलिये अच्युतगोत्री केवल वैष्णवको ही शास्त्रमें कहा है दूसरा अच्युतगोत्री नहीं हो सक्ता है, चाहै ज्ञानी हो चाहे ज्ञानीका बाप हो विना अच्युतभगवान्के शरण भये अच्युतगोत्र होना दुर्लभ है, और जो विद्वान् ज्ञानी परमहंस को अच्युतगोत्र कहते हैं वो शास्त्रको ठीक ठीक नहीं देखेहैं वो वैष्णवद्रोही हैं और विष्णुनिंदक हैं ॥ ४८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! विष्णुनिंदा किसको कहते हैं और कितने-प्रकारकी निंदा है (उत्तर) हे शिष्य ! विष्णुनिंदा तीन प्रकारकी शास्त्रमें कही है सो ब्रह्मवैवर्तके १७ अध्यायमें है

विष्णुनिंदा च त्रिविधा ब्रह्मणा कथिता पुरा ॥
अप्रत्यक्षं च कुरुते किंवा तं च न मन्यते ॥ ४९ ॥
देवान्यसाम्यं कुरुते ज्ञानहीनो नराधमः ॥
तस्यात्र निष्कृतिर्नास्ति यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥ ५० ॥

अर्थ-विष्णुनिंदा तीन प्रकारकी ब्रह्माजीने पूर्वकालमें कही है, तिसमें प्रथम निंदा यह है कि, गुप्तभावसे याने छिपकर निंदा करना कि जिसमें कोई जाने नहीं दूसरी निंदा यह है कि, प्रत्यक्ष न मानना

तीसरी निंदा यह है कि अन्य देवताओंको अर्थात् शिव ब्रह्मा देवी दुर्गा गणेशादि देवताओंको विष्णुभगवान्के बराबर कहना सो महामूर्ख ज्ञानहीन पापीका काम है उसका उद्धार होना दुर्लभ है कबतक कि जबतक ब्रह्मा चतुर्मुख हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! शैव शाक्त गाणपत्य सौरमतवाले याने पंच देवताके उपासनावाले कहते हैं कि, सब एकही है भेद मानना मूर्खत्व और महाभूल है कोईभी किसी देवताको भजे सब विष्णुको ही प्राप्त होते हैं इसपर बहुत शास्त्रमें प्रमाण देते हैं यथा-

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ॥
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥ ५१ ॥

अर्थ-जैसे आकाशसे गिरा जल सब एकत्र होकर समुद्रमें मिलजाता है, उसी प्रकारसे सब देवताओंका नमस्कार पूजन विष्णुको ही पहुंचता हैं और भी बहुत प्रमाण हैं जैसे कि नदी एक ही है घाट अनेक है ग्राम एक है आनेके मार्ग अनेक हैं, इसी प्रकारसे परमात्मा एक हैं अनेक रूप धारण किया है, जो जिसको भजते हैं सब ईश्वर हीको प्राप्त होते हैं । उसी प्रकारसे बहुत प्रमाण देकर कहते हैं और आप अन्य देवताओंको विष्णुके बराबर कहना दोष कहते हैं सो क्यों ? (उत्तर) हे शिष्य ! इस विषयमें बहुत वादाविवाद है इसीलिये विस्तारसे कहना ठीक न समझ कर थोरेहीमें कहना उचित है। हे शिष्य ! सब ग्रंथोंमें तीन प्रकारका सिद्धांत कहा है यथा रजोगुण सतोगुण तमोगुण तिनमें सिद्धांत सत्त्वगुणविशिष्ट विष्णुकोही मानना ठीक है । सतोगुणी शास्त्रको विद्वान् लोग विशेषशास्त्र कहते हैं और बाकी शास्त्रको सामान्य कहते हैं और जहां जिस शास्त्रमें वा पुराणमें विष्णुधर्मको विशेष कहा है वह विशेष वाक्य है,बाकी सब सामान्यवचन हैं ।बुद्धिमानोंको चाहिये कि सामान्य शास्त्रको त्यागकर विशेषको मानना उचित है, क्योंकि (सामान्य शास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत् ॥) भाव सामान्यशास्त्रसे विशेष

शास्त्र बलवान् है एही सिद्धांत विद्वानोंको सर्वत्र मानना चाहिये इसलिये अन्य देवका पूजनादि भगवान्को प्राप्त नहीं होते हैं यह निश्चय है जो जिसको पूजते हैं वो उसी देवताको प्राप्त होते हैं ऐसा प्रबल गीताशास्त्रका सिद्धांत है यथा ९ अध्याय ।

यांति देवव्रता देवान्पितॄन्यांति पितृव्रताः ॥
भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोऽपि माम्८२

अर्थ–देवताओंकी भक्ति करनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंकी भक्ति करनेवाले पितृलोकको जातेहैं, भूतोंकी पूजा करनेवाले भूतको प्राप्त होतेहैं, मेरा पूजन करनेवाले मेरहीको प्राप्त होतेहैं ॥ ८२॥ हे शिष्य ! यह प्रबल मुख्य सिद्धांत कहाहै इस सिद्धांतको सब विद्वान्लोग जानतेहैं परन्तु हठबुद्धिको नहीं छोड़तेहैं । अपना रोना जो है कि सब एक ही है सब एकहीमें प्राप्त होतेहैं यह हठ नहीं छोडतेहैं सो प्रभुमायाकी प्रबलता है विना कृपा भये हठ छूटना कठिन है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! इस प्रबल गीताके प्रमाणसे हमारी शंका दूर होगई अब यह प्रार्थना है कि, अन्य देवता भी तो ईश्वरहीके स्वरूप हैं फिर उनके पूजन करनेसे ईश्वरको क्यों नहीं प्राप्त होतेहैं । दूसरी प्रार्थना यह है कि, "सर्वदेवनमस्कारः" यह श्लोकभी तो प्रबल शास्त्र विष्णुसहस्रनामहीका है जो कि महाभारतहीसे निकलाहै फिर परस्पर विरुद्ध क्यों ? (उत्तर) हेशिष्य ! विरुद्ध कुछभी नहीं है केवल समझनेका भेद है उसी गीताजीके ९ अध्यायमें ऐसा कहाहै यथा ॥ श्लोक २३–

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेऽपि मामेव कौन्तेय भजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥८३॥

अर्थ–जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक अन्यदेवताओंका पूजन करतेहैं वे भी मेरकोही पूजतेहैं परन्तु हे अर्जुन ! वह सेवा पूजा विधिपूर्वक नहीं

करतेहैं इसी वास्ते अंगीकार नहीं करतेहैं अगर विधिपूर्वक पूजन करें तो मेरेको प्राप्त हों ॥ ५३ ॥ विधिपूर्वकका भाव यह है कि, "मानिय सबहिं रामके नाते" अर्थात् शिव ब्रह्मादि देवताओंको भगवद्दास जानकर पूजन करे, नमस्कार करे सब प्रभुको प्राप्त होताहै। और अविधिके मतलब है कि, जिस देवताको पूजना उसीकोही प्रधान मानलेना यह महामूर्खता है जैसे कि, रामजीको छोड़कर अपने २ इष्टदेवताकोही सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् सर्वके कारण अनादि ब्रह्म मानना यह भूल है उनकी गति नहीं होतीहै (प्रश्न) हे स्वामीजा ! कौन देवता किस फलके देनेवाले हैं और विष्णुभगवान् किस फलके दाता हैं (उत्तर) हे शिष्य कृष्णजन्मखण्डके ७५ अध्यायमें कहाहै यथा—

देवषट्कं च संपूज्य सर्वादौ विघ्नविघ्नतः ॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥५४॥
गणेशं विघ्ननाशाय सूर्यं व्याधिविनाशने ॥
वह्निं प्राप्तिनिमित्तेन शांतौ शुद्धौ भवेद्ध्रुवम् ॥५५॥
विष्णुं मोक्षनिमित्तेन ज्ञानदानाय शंकरम् ॥
बुद्धिभुक्तिनिमित्तेन पार्वतीं पूजयेत्सुधीः ॥ ५६ ॥

अर्थ-सब कामके आदिमें छ देवताको विघ्ननाशार्थ पूजे तहां कहते हैं कि, गणेश सूर्य अग्नि विष्णु शिव शक्ति ॥ गणेशजीको विघ्ननाशके लिये पूजे और रोगनाशके लिये सूर्यको पूजे शांति शुद्धिकी प्राप्तिके वास्ते अग्निका पूजन है और मोक्षके लिये विष्णुको पूजे ज्ञानप्राप्तिके लिये शिवको, बुद्धि तथा भोगप्राप्तिके वास्ते शक्तिका पूजन करे ॥ ५४ ॥ ५६ ॥ हे शिष्य ! शास्त्रका सिद्धांत यही है और मोक्षके देनेवाले विष्णुही हैं यथा स्कांदपुराणे—

बंधको भवपाशेन भवपाशाच्च मोचकः ॥
कैवल्यदः परं ब्रह्म विष्णुरेव सनातनः ॥ ५७ ॥

अर्थ–'बंधमोक्षप्रद सर्वपर, मायाप्रेरक सीव' जन्ममरणसे छोडानेवाले और भवबंधनमें डारनेवाले मोक्षके देनेवाले केवल परब्रह्म सनातन विष्णुही हैं दूसरा नहीं है ॥५७॥ हे शिष्य! इसी प्रकारके बहुत प्रमाण हैं इसलिये विष्णुदेवहीका पूजन प्रधान है विष्णुके पूजन भजन करनेसे सब देवताओंका पूजन सेवन होजाताहै यथा प्रमाण श्रीमद्भागवते–

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यंति तत्स्कंधभुजोपशाखाः । प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ ५८ ॥

अर्थ–जैसे वृक्षकी मूल (जड़) में जल सींचनेसे सब कंध शाखा तृप्त होजातेहैं पुनः जैसे मुखके द्वारा भोजन करनेसे सब इन्द्रियां तृप्त होजातीहैं उसीही प्रकारसे रामजीके पूजन स्मरण करनेसे सब देवतालोग प्रसन्न होजाते हैं ॥ ५८ ॥ पुनः गोस्वामी तुलसीदासजीका सिद्धांत है यथा–"एकै साधे सब सधे सब साधे, सब जाय । जो कोइ सींचें मूलको, डार पात हरिआय"–पुनः आदिपुराणे २६ अध्याये–

व्यभिचारपरो धर्मो न मे तोषाय कल्पते ॥
यावन्मे पूजनं नास्ति तावद्देवान्न वै यजेत् ॥५९॥
मयि प्रपूजिते देवाः पितरश्चैव पूजिताः ॥
यथा सिक्ते वृक्षमूले पत्रशाखादिसेचनम् ॥
तथा मे पूजने जाते सर्वेषां पूजनं भवेत् ॥ ६० ॥

अर्थ–जिस समय यशोदाजी देवदेवी घरमें पूजन करने लगी हैं उस समयमें श्रीकृष्णजी नाराज होकर घरसे चलदिये तब यशोदा मैय्या मनानेको गई है तब श्रीकृष्णजी अनन्य धर्म उपदेश करनेलगे कि,

जिस घरमें देवता देवीकी पूजा होती है उस घरमें मेरा निवास नहीं होता है, चाहै अन्यदेवताओंका पूजनादि व्यभिचारधर्म अर्थात् पंच देवताकी जो पूजन है वही व्यभिचारधर्म है उसको पंचभतरिया कहते हैं चाहै पंचभतरियाके धर्म उत्तम हो परन्तु मेरे प्रसन्नताके लिये नहीं है जबतक हमारी पूजन नहीं है तबतक अन्य देवकी पूजन करे जब हम मिलजाते हैं फिर देवताओंकी पूजन वृथा है । जैसे वृक्षके मूलमें जल सीचेनेसे सब डाल पत्रादि सिचे जाते हैं याने हरा होजाते हैं उसी प्रकारसे मेरे पूजन करनेसे सब देवदेवीकी पूजन होजाता है तथा पितर लोगभी पूजित होजाते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! वैष्णव होकर अन्य देवताओंकी पूजन करे कि नहीं अगर मूर्खतासे करे तो क्या फल होता है ? कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! उसी स्थानमें कहा है ।

न भक्ता भक्तिमन्तोपि येऽन्यदेवार्च्चने रताः ॥
यथा स्त्री कुलटा मूढा न याति पतिलोकताम् ६१॥
योऽनन्यभक्त्या मां नित्यं भजेत मनुजो मुने ॥
तस्याधीनोऽस्मि सततं नैवान्यत्र व्रजेत्कचित् ६२॥
अनन्यभक्तिसदृशं नान्यत्प्रियतमं मम ॥
न जानंति नरा मूढाः किं देवैः सेवितं सुखम् ॥
श्वलांगूलं समाश्रित्य को हि तीर्णोऽबुधेर्जलम् ६३॥

अर्थ-भगवान नारदजीसे कहते हैं कि भक्तिमान भक्तभी दूसरे देवताकी पूजन करनेवाले मेरेको प्राप्त नहीं होते हैं जैसे कुलटा (पर पतिसे प्रीति करनेवाली) स्त्री पतिलोकको नहीं जाती है केवल पति-व्रताही स्त्री पतिलोकको जाती है यह सर्वथा निश्चय है उसी प्रकारसे अन्य देवके पूजन करनेवाले वैकुण्ठलोक नहीं जासकते हैं यह सिद्धांत निश्चय है इसमें सन्देह करना मूर्खता है । हे नारदजी ! जो अनन्यभक्त

भक्तिसे नित्य नेमसे मेरेको भजते हैं उसके आधीनमें मैं सदैव रहताहूं और उस भक्तको छोडकर कहीं अन्यत्र नहीं जाते हैं । "अनन्य भक्तिकी समान मेरेको अन्य कुछ भी नहीं प्यारा है. हे नारदजी ! मूर्खलोग नहीं जानते हैं कि, दूसरे देवताकी सेवन करनेसे क्या सुख होता है भला कहो तो श्वानकी पुच्छ पकडकर कौन संसारसागर पार हुआ है जैसे श्वानके लांगूल पकड़कर समुद्रपार होना कठिन है उसी प्रकारसे देवदेवीकी सेवासे संसार पार (मोक्ष) होना दुर्लभ है इस-लिये बुद्धिमानोंको अवश्य चाहिये कि संसारसे उद्धार होनेके लिये भगवत्शरण होना उचित है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

एष निष्कण्टकः पंथा यत्र संपूज्यते हरिः ॥
कुपथं तं विजानीयाद्गोविन्दरहितागमम् ॥ ६४ ॥

अर्थ--विष्णुसहस्रनाममें कहा है कि एक यही निष्कण्टक पन्थ है जिसमें भगवान्के पूजन स्मरण है और जिसमें रामजीके भजन स्मरण नहीं है वही कुमार्ग जानना चाहिये ॥ ६४ ॥ हे शिष्य ! इसी प्रका-रसे बहुत प्रमाण हैं विद्वानोंके वास्ते प्रबल शास्त्रका प्रमाण एकही बहुत है और मूर्ख हठीके वास्ते सहस्रों प्रमाण कुछ भी नहीं है । अग्नि-पुराणे अ० ३२७-

रुद्रस्य पूजनाद्रुद्रो विष्णुः स्याद्विष्णुपूजनात् ॥
सूर्यः स्यात्सूर्यपूजातःशक्त्यादिः शक्तिपूजनात्६५

अर्थ-शिवजीके पूजनसे शिवरूप होते हैं, विष्णुजीके पूजनसे विष्णु-रूप होते हैं सूर्यके पूजनसे सूर्यरूप होजाते हैं, शक्ति आदि देवदेवीकी पूजनसे शक्तिरूप होते हैं देवरूप होते हैं । इहां पर (कीटभृंगन्याय)से जानना चाहिये॥६५॥पुनः भविष्यपुराणे प्रतिसर्गपर्वणि ४ खण्डे यथा-

ब्रह्माण्डोयं लोकमयः परं तस्माच्च मत्पदम् ॥
मद्भक्ता भूतले ये वै ते गच्छंति परं पदम् ॥ ६६ ॥

देवभक्ताश्च ये लोकाः सप्तलोकान् व्रजंति ते ॥
ये तु वै तामसा लोका दैत्यपूजनतत्पराः ॥
ते गच्छंति महीलोकानतलादिमयांस्तथा ॥ ६७ ॥

अर्थ–चौदहो लोक मिलकर ब्रह्माण्ड कहाजाताहै भगवान् कहतेहैं कि, इस ब्रह्माण्डसे हमारा पद याने विष्णुपद (वैकुण्ठ) परे है जो मेरा भक्त इस संसारमें है वे सब परमपदको जातेहैं । और देवताके जो भक्त हैं संसारमें वे सब सप्त स्वर्गादिलोकको जातेहैं और जो दैत्य दानवके पूजनमें तत्पर हैं वे तामसी सप्तपातालादि लोकको जाते हैं भाव जो जिसको भजतेहैं वे उसीहीको प्राप्त होतेहैं यह सिद्धान्त सब शास्त्रका है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! शैव शाक्त लोग जो विष्णुभगवान्का पूजन स्मरण करे तो उनको वैष्णव कहना कि, नहीं ? (उत्तर) हे शिष्य ! विना वैष्णव गुरु किये वैष्णव होना दुर्लभ है यथा पाद्मोत्तरखण्डे–

विना श्रीवैष्णवीं दीक्षां प्रसादं सद्गुरोर्विना ॥
विना श्रीवैष्णवं धर्मं कथं भागवतो भवेत् ॥६८॥

अर्थ–शिवजीके वचन हैं कि, श्रीवैष्णवी दीक्षाको लिये विना, श्रीसद्गुरु (वैष्णव) गुरुकी कृपा भये विना, श्रीवैष्णवधर्मको धारण अर्थात् शंखचक्रांकित ऊर्ध्वपुण्ड्रादि धारण किये बिना वैष्णव कैसे होसक्तेहैं ॥ ६८ ॥ हे शिष्य ! यथार्थ वैष्णव होकर भजन स्मरण करना चाहिये नकली वैष्णव ठीक नहीं है जैसे कि कुमारी कन्या किसीको पति मानकर सेवा करे सो सब वृथा है इसलिये वैष्णवसे विष्णुमन्त्र लेकरके निष्कपट भजन करे वैष्णवका माहात्म्य भारी है यह बात ब्रह्मवैवर्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें श्रीकृष्णजीके वचन है ।

गुरुवक्त्राद्विष्णुमंत्रं यस्य कर्णे विशत्परम् ॥
जीवन्मुक्तं वैष्णवं तं वेदाः सर्वे वदंति च ॥ ६९॥

पुरुषाणां शतं पूर्वं पैतृकं च परं शतम् ॥
मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम् ॥ ७० ॥
भगिनीं भ्रातरं चैव भागिनेयं च मातुलम् ॥
श्वश्रूं च श्वशुरं चैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् ॥ ७१ ॥

अर्थ–श्रीगुरुस्वामीके मुखसे विष्णुमन्त्र जिसके कानमें प्रवेश करते हैं उन वैष्णवको चारों वेद जीवन्मुक्त कहते हैं। वह वैष्णव सौ पुरुषा पूर्वकी सौ पुरुषा पिताकी सौ पुरुषा नानाकी सौ पुरुषा माताकी माता बहिनकी भ्राताको भांजाको मामाको तथा सासुको ससुरको और गुरुस्त्रीको गुरुपुत्रको उद्धार करते हैं ॥ ६९–७१ ॥ पुनः तत्रैव–

गुरुं च ज्ञानदातारं मित्रं च सहचारिणम् ॥
भृत्यं शिष्यं तथा चेटीं प्रजाः स्वाश्रमसन्निधौ७२॥
उद्धरेदात्मना सार्द्धं मंत्रग्रहणमात्रतः ॥
मंत्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ ७३ ॥

अर्थ–ज्ञानदाता गुरुको और मित्रको अपने साथीको सेवकको शिष्यको तथा चेटी (चेरी) को समीपके रहनेवाली प्रजा सबको अपनी आत्माके सहित अर्थात् जिन सबको पूर्व कहि आये हैं उन सबको अपने साथही मंत्रग्रहणमात्रहीसे उद्धार करते हैं और विष्णु-मन्त्र लेनेहीसे जीवन्मुक्त मनुष्य होजाते हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे शिष्य! उसीही स्थानमें और भी कहा है यथा–

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे ॥
सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥७४॥
सर्वेषामाश्रमाणां च पूजितो ब्राह्मणः शुचिः ॥
ततोऽधिकः पूजितोपि ब्राह्मणो यदि वैष्णवः ॥
न हि पूतं प्रपश्यामि वैष्णवब्राह्मणात्परम् ॥७५॥

अर्थ-पृथ्वीमें जितने तीर्थ हैं अर्थात् साढ़ेतीन कोटि तीर्थ हैं सो सब समुद्रमें हैं और समुद्रमें जितने तीर्थ हैं सो सब ब्राह्मणके चरणमें हैं सब आश्रमोंमें ब्राह्मण पवित्र है और उस ब्राह्मणसे वैष्णव ब्राह्मण विशेष पवित्र है, वैष्णव ब्राह्मणसे विशेष पवित्र कोई नहीं देखताहूं यह श्रीकृष्णभगवानका वचन है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! वैष्णवके चरणोदक और प्रसाद अर्थात् जूँठा पाना चाहिये कि नहीं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! सामान्य शास्त्रका सिद्धांत है कि एक गुरुके प्रसाद लेना चाहिये अन्यका नहीं और वैष्णव शास्त्रका सिद्धांत है कि, वैष्णवके उच्छिष्ट अवश्य लेना चाहिये इस विषयको देखना हो तो भक्तमाल और प्रपन्नामृत दोनों ग्रंथ देखो और बिना दोनों ग्रंथके देखे भक्तिमहारानी कृपा नहीं करतीहैं इसलिये भक्ति चाहनेवालेको दोनों ग्रंथ अवश्यही देखना चाहिये (प्रश्न) हे स्वामीजी ! कोई शास्त्रका प्रमाण हो तो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! ब्रह्माजीके शापसे नारदजी जब दासीपुत्र हुयेहैं तब वैष्णवकेही प्रसाद पानेसे फिर ब्रह्माजीके पुत्र भये और भगवान्के अनन्य भक्त हुये यथा ब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे १४ अध्याये-

ततोऽभूद्ब्रह्मणः शापाद्दासीपुत्रो द्विजस्य च ॥
ततोऽधुना ब्रह्मपुत्रो वैष्णवोच्छिष्टकारणात् ॥ ७६ ॥

अर्थ-प्रथम शापसे नारदजी उपबर्हण गंधर्व हुये दूसरे शापसे वैष्णव ब्राह्मणके दासीपुत्र हुये, तहां वैष्णवोच्छिष्टकारणसे इस समयमें ब्रह्माजीके पुत्र हुये (प्रश्न) हे स्वामीजी ! दासी दासको तो जूँठा खाना धर्म है इसलिये लिखा है सबको खाना चाहिये कि नहीं ॥ ७६ ॥ (उत्तर) हे शिष्य ! जिसके अंतःकरणमें भक्ति है वही सज्जन इस बातको जानतेहैं क्योंकि भक्तिका सिद्धान्त सूक्ष्म है और जिनके अंतःकरणमें दुर्बुद्धि महारानी घुसी है वो दुष्ट क्या जाने. हे

शिष्य ! जाति, रूप, महत्व, विद्या, युवा अवस्थाकी मद यही ५ पांच भक्तिकी कण्टक हैं जिनमें यह पांच मद नहीं है वे इसको जानतेहैं और वैष्णवका माहात्म्य तो ऐसा है कृष्णजन्मखण्डे अध्याय २१-

प्रियाः प्राणाधिका विष्णोर्ये विप्रा हरिसेविनः ॥
द्विजानां हरिभक्तानां प्रभावो दुर्लभः श्रुतौ ॥७७॥
येषां पदाब्जरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥
येषां च पादचिह्नं च यत्तीर्थं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ७८॥
तेषां च स्पर्शमात्रेण तीर्थपापं प्रणश्यति ॥
आलिंगनात्सदालापात्तेषामुच्छिष्टभोजनात्॥७९॥
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥
भ्रमणे सर्वतीर्थानां यत्पुण्यं स्नानतो भवेत् ॥८०॥
हरिदासस्य विप्रस्य तत्पुण्यं दर्शनाल्लभेत् ॥
ये विप्रा हरये दत्त्वा नित्यमन्नं च भुंजते ॥
उच्छिष्टभोजनात्तेषां हरेर्दास्यं लभेन्नरः ॥ ८१ ॥

अर्थ-जो ब्राह्मण वैष्णव विष्णुसेवक हैं वो भगवान्को प्राणसे भी अधिक प्यारे हैं वैष्णव ब्राह्मणका प्रभाव वेदमें दुर्लभ है। जिनके चरणरजके स्पर्शसे पृथ्वी पवित्र होजातीहै उस वैष्णवके जो चरणचिह्न हैं वही तीर्थ कहा है। उस वैष्णवके स्पर्शमात्र करते ही तीर्थ भी पवित्र होजातेहैं तथा तीर्थके सब पापभी नष्ट होजातेहैं वैष्णवके आलिंगन (मिलने) से भाषण याने सत्संग करनेसे उनके उच्छिष्ट भोजन करनेसे दरशनकरनेसे स्पर्श अर्थात् चरणसेवादि करनेसे सब पापोंसे छूटजातेहैं। सब तीर्थोंमें स्नान तथा यात्रा करनेसे जौन पुण्य प्राप्त होतेहैं वह पुण्य वैष्णवब्राह्मणके दर्शन करनेसे होतेहैं। जो वैष्णवब्राह्मण नित्यप्रति भगवान्को भोग लगाकरके भोजन करतेहैं

उनके जूँठाको पानेसे भगवान्की प्राप्ति होतीहै इसप्रकारसे बहुत प्रमाण हैं इस वास्ते वैष्णव साधुके उच्छिष्ट अवश्य लेना चाहिये ॥ ७७-८१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! अगर शूद्र भगवद्भक्त हो तो उनको मानना चाहिये कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य! भगवान्के भक्तोंको शूद्र नहीं जानना चाहिये जो वैष्णवको शूद्र जानतेहैं और कहतेहैं वो महामूर्ख हैं भगवान्के भक्त सर्वोपरि है यथा महाभारते-

न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः ॥
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने ॥ ८२ ॥

अर्थ-भगवान् दुर्योधनसे कहते हैं कि, भगवद्भक्त शूद्र नहीं हैं ब्राह्मण हैं सब वर्णमें शूद्र वही है जो भगवान्का भक्त नहीं है यथा-"चतुराई चूल्हें परे, भट्ठी परे आचार। तुलसी रघुपति भगति विनु, चारो वर्ण चमार।" ॥ ८२ ॥ पुनः भार्गवपुराणे-

भगवद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकिल्बिषम् ॥
श्वपचोपि बुधैःश्लाघ्यो न वेदाढ्योपि नास्तिकः ८३

अर्थ-भगवद्भक्तिरूप दीप्त अग्निकरके जिसके दुर्जातिरूप पाप दूर होगयाहै वह श्वपचभी श्रेष्ठ है और नास्तिक अर्थात् भगवान्की भक्तिसे जो विमुख है वह ब्राह्मण चारोंवेदोंकेभी जाननेवाले श्रेष्ठ नहींहै॥८३॥ पुनः तत्रैव-

विद्याविनयसंपन्ना ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥
मयि भक्तिं न कुर्वंति चाण्डालसदृशा हि ते॥८४॥

अर्थ-सर्वविद्यासंपन्न हो, शीलस्वभावयुक्त हो, वेदको जाननेवाला हो और भगवान्की भक्ति नहीं करता हो तो वह ब्राह्मण चाण्डालके समान है ॥ ८४ ॥ पुनः नारदीयपुराणे वामदेववाक्यं रुक्मांगदसे-

श्वपचोपि महीपाल विष्णोर्भक्तो द्विजाधिकः ॥
विष्णुभक्तिविहीनो यो यतिश्च श्वपचाधमः ॥

इतिहाससमुच्चये भगवानुवाच ॥
न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः ॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स वै पूज्यो यथा ह्यहम्॥८५॥
संकीर्णयोनयः पूता ये भक्ता मधुसूदने ॥
म्लेच्छतुल्याः कुलीनास्ते ये न भक्ता जनार्दने८६॥

अर्थ—वामदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! विष्णुके भक्ति करनेवाले श्वपचभी ब्राह्मणसे अधिक हैं और विष्णुभक्तिसे हीन संन्यासीभी भंगीसे नीच जानना चाहिये ॥ इतिहाससमुच्चयमें भगवतके वचन है कि, चारों वेदके जाननेवाले मेरेको प्रिय नहीं हैं और मेरा भक्त अगर श्वपचभी हो तो मेरेको प्यारा है। उसीको देवे उसीको ग्रहण करे वही पूज्य है जैसा कि मै हूं भाव. मेरेही बराबर जानना चाहिये। भगवान्के भक्त महानीचभी पवित्र हैं और महा उत्तम कुलभी नीच है जो भगवान्का भक्त नहीं है। हे शिष्य! विस्तारसे (वेदार्थ प्रकाश रामायण) में कहाहै देखलेना। भगवान्के भक्तोंकी जाति पाँति निर्णय करना दोष है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम् ॥
वैष्णवो वर्णबाह्योपि पुनाति भुवनत्रयम्॥८७॥
शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा ॥
वीक्षते जातिसामान्यं स याति नरकं ध्रुवम्॥८८॥
निंदां कुर्वंति ये भूता वैष्णवानां महात्मनाम् ॥
पतंति पितृभिः सार्धं महारौरवसंज्ञके ॥ ८९ ॥

अर्थ—अवैष्णव ब्राह्मण लोकमें श्वपचके समान देखना चाहिये और सब वर्णसे बाहर भाव महानीच भी वैष्णव हो तो तीनों लोकको पवित्र करतेहैं । भगवत् भक्त शूद्रको निषादको तथा श्वपचको जो

नीच जाति जानतेहैं वह पापी महाघोर नरकमें जातेहैं ॥ जो मनुष्य साधु वैष्णवके निंदा करतेहैं वह मूर्ख पितरोंके सहित महाघोर रौरव नरकमें जातेहैं यह वचन वामनपुराणके हैं ॥ ८७-८९ ॥ स्कांदपुराणे-

अर्चावतारोपादानं वैष्णवोत्पत्तिचिंतनम् ॥
मातृयोनिपरीक्षायास्तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ९० ॥

अर्थ-अर्चावतार (प्रतिमा) की उत्पत्ति और वैष्णवोंकी उत्पत्तिका चिंतन करना अर्थात् साधु वैष्णवोंके जाति पाति गोत्र प्रथम जन्मके नाम ग्राम पूछना दोष है । जो साधु वैष्णवोंकी जातिका निर्णय करतेहैं वह मूर्ख मातायोनिकी जानो निर्णय करताहै ऐसा ऋषिलोग कहतेहैं । हे शिष्य! इसी वास्ते वैष्णवके जातिकी निर्णय कभी न करें भगवद्दास जानकर नमस्कार पूजन करना चाहिये ॥ ९० ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! वैष्णव साधुके निंदा करनेसे क्या गति होती है ? (उत्तर) हे शिष्य ! वैष्णवोंकी निंदा केवल राक्षसलोगही करतेहैं बाकी और नहीं कोई करतेहैं। वैष्णवकी निंदा भूलसेभी न करें जिसने वैष्णवका निंदा किया उसने विष्णुकी निंदा किया तथा सबका निंदकी होचुका । अब प्रमाण सुनो नारदतंत्रे-

यो हि भागवताँल्लोके उपहासं द्विजोत्तमः ॥
करोति तस्य नश्यंति धर्मश्चार्थो यशः सुतः॥९१॥
निंदां कुर्वंति ये मूढा वैष्णवानां महात्मनाम् ॥
पतंति पितृभिस्साद्धं महारौरवसंज्ञके ॥ ९२ ॥
मम भक्तजनान्दृष्ट्वा निंदां कुर्वंति ये नराः ॥
तेषां सर्वाणि नश्यंति सत्यंसत्यं धनंजय ॥ ९३ ॥

अर्थ-जो ब्राह्मण लोकमें साधु वैष्णवका निन्दा हँसी (मसखरी) करते हैं उसका अर्थ धर्म यश पुत्र पौत्र सर्वस्व नाश होजाते हैं । जो

मूर्ख साधु महात्माकी निन्दा करते हैं वह मूर्ख २१ पुरुष पितरोंके समेत महारौरव नरकमें जाते हैं। हमारे भक्तजनको देखकर जो मूर्ख निन्दा करता है उसके सब नाश होजाते हैं। हे अर्जुन! यह वचन मेरा सत्य है सत्य है सत्य है ॥ ९१-९३ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! बहुतसे ब्राह्मण लोग साधु वैष्णवोंकी निन्दा करते हैं तथा तिलक कण्ठीकेभी निन्दा करते हैं सो क्यों कहिये (उत्तर) हे शिष्य! ब्राह्मण तो भगवत्‌रूप हैं वो वैष्णवके निन्दा कभी नहीं करसकते हैं अगर ब्राह्मण होकर जो वैष्णवके निंदा करते हैं वह पूर्वजन्मका राक्षस हैं। ब्राह्मणका अवतार धारण किया है। जैसे रावण आदिक राक्षस (बकडा भैंसा) के खानेवाले विष्णुद्रोही रहे वैसाही उनको जानो यथा प्रमाण-

राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायंते ब्रह्मयोनिषु ॥
परस्परं विरुध्यंति भगवद्धर्मवंचकाः ॥ ९४ ॥
द्विजानुष्ठानरहिता भगवद्धर्मवर्जिताः ॥
कलौ विप्रा भविष्यंति कंचुकोष्णीषधारिणः ॥
घोरे कलियुगे ब्रह्मञ्जनानां पापकर्मणाम् ॥ ९५ ॥

हे शिष्य! स्कान्दपुराणोक्त वाल्मीकीय रामायणके माहात्म्यमें कहा है कि, राक्षसलोग कलियुगके आश्रय लेकर ब्राह्मणोंके कुलमें जन्म लेकर परस्पर विरोध करेंगे और भगवद्धर्म जो है शंख चक्र तिलक कण्ठी माला तथा भगवत्‌भजन स्मरणके निंदा करेंगे अर्थात् वैष्णव साधुको देखकरके जरजायँगे और टेढी नजरसे देखेंगे ॥ ९४ ॥ ॥ ९५ ॥ हे शिष्य! जो ब्राह्मण होकर वैष्णवकी निंदा करे उसको साक्षात् राक्षस जानना चाहिये, क्योंकि रावणभी ब्राह्मणही कुलमें जन्म लियारहा और राक्षसोंका मुख्य धर्म यही है कि विष्णुसे और वैष्णवोंसे द्रोह करना नहीं तो रावण क्या विद्वान् न था रावण क्या अग्निहोत्री न था रावण क्या देवी दुर्गाका भक्त न था रावण क्या

शिवभक्त न था ? जरा वाल्मीकीय रामायण तो देखो हे शिष्य ! रावणने वेदके ऊपर टीकाभी किया है परन्तु था विष्णुद्रोही, इसीवास्ते राक्षस कहागया क्योंकि शास्त्रका सिद्धांत है यथा–

सरसं विपरीतं चेत्सरसत्वं न मुञ्चति ॥
साक्षरा विपरीताश्चेद्राक्षसा एव केवलम् ॥ ९६ ॥

अर्थ–विष्णुधर्मतत्त्वका सिद्धांत है कि सरस वस्तुको यदि विपरीत याने उलटा पुलटा करे तो भी सरसत्वको नहीं त्यागते हैं और यदि साक्षराको उलटा के पढे तो केवल राक्षसही होजाते हैं। भाव यह है कि, साक्षरा याने विद्वान्लोग शास्त्र पढकर विपरीत चलें तो राक्षसही जानना चाहिये जैसे रावण विद्वान् होकर शास्त्रसे विरुद्ध कर्म किया और राक्षस कहाया ऐसे ही दयानन्दकोभी जानना चाहिये, तथा और भी जो जो विष्णुनिंदक हैं सो सब राक्षसही हैं यथा–"मानहिं मातु पिता नहिं देवा, साधुनसे करवावहिं सेवा । जिनकी यह आचरण भवानी, ते जानहु निशिचरसम प्रानी ॥" इत्यादि प्रमाणोंसे जानना चाहिये ॥ ९६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अवैष्णव ब्राह्मणसे याने शैव शाक्तसे रामतारकमन्त्र लेना चाहिये कि नहीं ?(उत्तर) हे शिष्य ! शैव शाक्तसे जो राममंत्र विष्णुमंत्र नारायणमन्त्र लेते हैं सो अखण्ड नरकमें जाते हैं ऐसा वैष्णवशास्त्र नारदपंचरात्रका सिद्धांत है यथा–

अवैष्णवोपदिष्टेन मंत्रेण नरकं व्रजेत् ॥
अवैष्णवाऽऽहृतं मंत्रं यः पठेद्वैष्णवो द्विजः ॥
कल्पकोटिसहस्राणि पच्यते नरकाग्निना ॥ ९७ ॥

पुनः पाराशरस्मृतौ ।

अचक्रधारिणं विप्रं योऽध्यापयति देशिकः ॥
शिष्येण नरकं याति कल्पकोटिशतं द्विजः ॥९८ ॥

पुनरपि हारीतधर्मशास्त्रे ॥

अचक्रधारिणं विप्रं मंत्रमध्यापयेत्तु यः ॥
रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालीं योनिमाप्नुयात्॥९९॥

अर्थ–अवैष्णवके उपदेश मंत्र करके नरकमें जाते हैं और शैव शाक्तके दिया मंत्रको जो वैष्णव ब्राह्मण जपते हैं वह सहस्रकोटि कल्पतक नरकरूप अग्निमें पचते हैं ॥ पाराशरस्मृतिमें कहा है कि, शंखचक्रांकितसे जो ब्राह्मण रहित है उनको जो वैष्णव गुरु विद्या व मंत्र पढाते हैं वह शिष्यके सहित सौ कोटि कल्पतक रौरवनरकमें जाते हैं। भाव अवैष्णवको विद्या नहीं पढाना चाहिये और न अवैष्णवसे पढनाही चाहिये ॥ हारीतस्मृतिमें लिखा है कि, शंखचक्रसे जो ब्राह्मण रहित है उनको जो वैष्णव मंत्र पढाते हैं वह रौरव नरक भोगिके चाण्डाली योनिको प्राप्त होते हैं ॥ ९७-९९ ॥ (प्रश्न) हे स्वामी ! जो यदि शैव शाक्त वैष्णव होनें चाहे तो प्रथम शिव दुर्गादिमन्त्रको त्याग कर वैष्णवसे विष्णुमंत्र लेसकते हैं कि नहीं। भाव एक गुरु छोडकर वैष्णव गुरु दूसरा करे कि नहीं अगर इसमें शास्त्रका आज्ञा हो तो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! विना वैष्णवीमंत्रके लिये गति नहीं होती है इस विषयमें खास वेदकाही प्रमाण है यथा रामतापनीयोपनिषादि–

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः ॥
मन्वंतरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥ १०० ॥
ततः प्रसन्नो भगवाञ्छ्रीरामः प्राह शंकरम् ॥
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ॥ १०१ ॥
अतःसत्यानन्दचिदात्मा श्रीराम ईश्वरः पप्रच्छ ॥
मणिकर्ण्यां वा मत्क्षेत्रे गंगायां वा तटे पुनः ॥
म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिं नातो वरांतरम् ॥१०२॥

अर्थ-श्रीरामजीके नामको शंकरजीने काशीपुरीमें एक हजार मन्वंतर जाप किया तब रामजी प्रगट होकर शिवजीसे कहा वर मांगो जो तुम्हारी अभीष्ट हो वो हम देंगे। यह बात सुनकर शिवजी बोले मेरे क्षेत्र काशी पुरीमें तथा मणिकर्णिकाक्षेत्र गंगाजीके तटमें जो मरे मुक्ति हो ॥ १००-१०२ ॥ यह बात सुन श्रीरामजी बोले ।

क्षेत्रेऽत्र तव देवेश यत्रकुत्रापि वा मृताः ॥
कृमिकीटादयोप्याशु मुक्ताः संतु न चान्यथा १०३
अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये ॥
अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥ १०४ ॥
क्षेत्रेऽस्मिन्योर्च्चयेद्भक्त्या मंत्रेणानेन मां शिव ॥
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः १०५
त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभंते षडक्षरम् ॥
जीवंतो मंत्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवंति ते १०६॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्यकस्यापि वा स्वयम् ॥
उपदेक्ष्यसि मन्मंत्रं स मुक्तो भविता शिव ॥१०७॥

हे देवेश ! तुम्हारे क्षेत्र काशीपुरीमें जहां कहीं भी कीट पक्षी पतंगादि जीव मरेंगे वह शीघ्रही मुक्त होजावेंगे यह सत्य है अन्यथा नहीं. यह जो तुम्हारी काशीपुरी है अविमुक्तक्षेत्र सबके मुक्ति देनेवाली इसमें मैंभी पाषाणादिके प्रतिमामें रहूंगा. जो कोई इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक हमारी मूर्तिकी पूजन करेगा उसको ब्रह्महत्यादि पापोंसे मोक्ष दूंगा मत शोच करो। तुमसे अथवा ब्रह्माजीसेभी जो कोई षडक्षर रामतारकमन्त्र लेंगे उसकी जीतही मन्त्र सिद्ध है वह मुक्त होकर मेरेको प्राप्त होगा । हे शिव मरनकालमें जिस किसीको दक्षिण कानमें हमारा रामतारक मन्त्र उपदेश करोगे वह मुक्त होजावेगा । इहांपर

मरणकालमें सब शैव शाक्त गाणपत्य सौर तथा सबको शंकरजी मन्त्र देतेहैं इसका अभिप्राय यही है कि सब मन्त्रवालेको रामतारकमन्त्र लेना चाहिये और गुरुको छोडकर गुरु करना चाहिये । हे शिष्य! अगर गुरु छोडकर गुरु करना दोष होता तो शिवजीने क्यों सब मंत्रवालेको राममंत्र देते. क्या सबको गुरु नहीं है? इससे यही सिद्ध हुआकि, सबको गुरु त्यागकर गुरु करना चाहिये अगर मोक्षकी चाह हो तो नहीं तो मोजे करे ॥ १०३–१०७ ॥ अब प्रमाण सुनो यथा पाद्मोत्तरे–

अवैष्णवोपदिष्टं च पूर्वमंत्रं परित्यजेत् ॥
पुनश्च विधिना सम्यग्वैष्णवाद्ग्राहयेन्मनुम् ॥ १०८ ॥
पुनरपि नारदपंचरात्रांतरगतपुष्करसंहितायाम् ।
अवैष्णवोपदेष्टा यश्चान्यमंत्रे रतोऽपि च ॥
वैष्णवाद्विष्णुमंत्रेण पुनः संस्कारमर्हति ॥ १०९ ॥

अर्थ–अवैष्णव याने शैवशाक्तके दिया पूर्वमंत्रको त्यागकर पुनः विधिपूर्वक वैष्णवसे विष्णुमंत्र लेवे ॥ पुष्करसंहितामें कहाहै कि, अवैष्णवोंके गुरु जो है शिव दुर्गादिके मंत्र जपनेवालेको चाहिये कि, वैष्णवसे विष्णुमंत्र फिर लेना चाहिये। हे शिष्य! इसी प्रकारसे बहुतही प्रमाण हैं सबको मंत्र लेना उचित है और जो कोई कहतेहैं कि, गुरुको छोडकर गुरु नहीं करना चाहिये वह मूर्ख हैं ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! विष्णुके सब मंत्रोंमें श्रेष्ठ कौन मंत्र है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य! उपासकोंके मतसे तो अपना २ मंत्र सबही श्रेष्ठ है परंतु विचार करनेसे और शास्त्रका सिद्धांत देखनेसे तो सब मंत्रोंमें राममंत्रही श्रेष्ठ देखाजाताहै काहेसे कि, राममंत्र श्रेष्ठ न होता तो योगीराज श्रीशंकरजी वैष्णवशिरोमणि होकर सब मंत्रोंको त्यागकर श्रीराममंत्रही काशीजीमें मुक्तिहेतु क्यों जपते? इससे रामतारकमंत्र सर्वोपरि है? हे शिष्य! वैष्णवोंके मुख्य ग्रंथ

हारीतस्मृतिमें सब मंत्रोंका वर्णन है। तीसरे अध्यायमें तहां ऐसा कहाहै यथा-

श्रीरामाय नमो ह्येष तारकब्रह्मनामकः ॥
नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ॥
अनन्ता भगवन्मंत्रा नानेन तु समाः कृताः ॥११०॥

अर्थ-श्रीरामायनमः ये जो 'तारक' ब्रह्म नामका महा मंत्र है सो विष्णु सहस्र नामके बराबर है. शास्त्रमें भगवानके अनन्त मंत्र हैं परंतु राम 'तारक' मंत्रके समान दूसरा मंत्र कोई भी नहीं है ॥ ११० ॥ हे शिष्य! विस्तारसे 'आगम' तंत्रमें कहा है यथा प्रमाण-

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौर्य्यमनुष्वथ ॥
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममंत्रः फलाधिकः ॥ १११ ॥
गाणपत्यादिमंत्रेषु जपः कोटिगुणाधिकः
मंत्रराजस्त्वनायासः फलदोयं षडक्षरः ॥ ११२ ॥
षडक्षरोऽयं मंत्रस्तु सर्वाघौघविनाशनः ॥
मंत्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥ ११३ ॥

अर्थ-गणेशमंत्र शिवमंत्र देवीमंत्र सूर्यमंत्र विष्णु नारायण कृष्ण वासुदेवादिक सब मंत्रमें राममंत्र श्रेष्ठ है और विशेष फलदायक है ॥ गणेश शिव देवी विष्णवादिकके मंत्रजापसे कोटिगुण अधिक फलदायक राममंत्र है ए जो षडक्षर मंत्रराज है सो विना परिश्रम फलदायक है ॥ ए षडक्षर मंत्रराज सर्वपापोंके नाशकरनेवाले हैं इसीसे सब मंत्रोंके राजा राममंत्र कहाहै. इनसे उत्तम मंत्र कोई नहीं है ॥ १११-११३ ॥ हे शिष्य! विशेष देखना तो वेदार्थप्रकाश रामायण देखो (प्रश्न) हे स्वामीजी! मंत्रराजका कुछ माहात्म्य कहिये (उत्तर) हे शिष्य! एक श्रुतिवेदके सुनाते हैं सुनो—

रामतापनीयोपनिषदि ॥

य एतं मंत्रराजं रामचन्द्रस्य षडक्षरं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति–स सोमपूतो भवति–स ब्रह्मणा पूतो भवति–स विष्णुना पूतो भवति–स रुद्रेण पूतो भवति–स सर्वेण पूतो भवति–स सर्वयज्ञक्रतुभिरिष्टवान् भवति–स वै देवैर्ज्ञातो भवति–इतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि भवंति–गायत्र्याः षष्टिशतसहस्राणि जप्तानि भवंति–प्रणवानामयुतानि जप्तानि भवंति–दश पूर्वान् दशोत्तरान् पुनाति–पंक्तिपावनो भवति–स महान्भवति–सोऽमृतत्वं च गच्छतीति श्रुतिः ॥ ११४ ॥

अर्थ–जो श्रीरामचन्द्रजीके यह मंत्रराज षडक्षरको नित्यप्रति जपतेहैं सो अग्निकरके पवित्र होतेहैं वह पुरुष चन्द्रमाकरके पवित्र होतेहैं वह ब्रह्माकरके पवित्र होतेहैं वह विष्णुकरके पवित्र होतेहैं वह रुद्रकरके पवित्र होते हैं वह सबकरके पवित्र होते हैं वह संपूर्ण यज्ञ करनेवालोंके अभीष्ट फलकी प्राप्तिवाले होतेहैं वह सब देवताओंकरके जानेजातेहैं वह इतिहासपुराणोंको सब रुद्रोंके मंत्रयंत्रादिको सौ सहस्र (लक्ष) जपनेवाले होतेहैं, ६० लक्ष गायत्रीकी जप करनेवाले होतेहैं वह दश सहस्र प्रणव (ॐ)कारमंत्रके जपनेवाले होतेहैं वह दश पुरुषा पूर्वका दश पीछेका एक आप अर्थात् २१ पीढीको पवित्र (उद्धार) करनेवाले होतेहैं वह पंक्तिको पवित्र करनेवाले होतेहैं वह महान् होतेहैं अमृततुल्य (मोक्ष)को प्राप्त होतेहैं । इसप्रकार श्रुति कहती है॥११४॥ हे शिष्य! इसीप्रकारकी बहुत श्रुति, स्मृति प्रमाण हैं केवल

विस्तारके भयसे नहीं कहतेहैं । (प्रश्न) हे स्वामीजी ! राममंत्रवालेको विष्णु नारायणादिके मंत्र लेना चाहिये कि नहीं जैसे कि, कोई २ साधु वैष्णव आचारी वैष्णवसे नारायणमंत्र लेतेहैं सो लेना चाहिये कि नहीं? (उत्तर) हे शिष्य ! राममंत्र लेकर अन्य मंत्र लेवे तो लेनेवाला और देनेवाला दोनों अखण्ड नरकमें जातेहैं यथा भुशुण्डीरामायणे—

राममंत्रं च ये लब्ध्वा पुनरन्यं गृह्णंति ये ॥
नरकान्न निवर्तंते यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ११५ ॥
राममंत्रं समादाय योऽन्यमंत्रं समिच्छति ॥
गृहीत्वा प्राप्नुयात्पापं दाता च नरकं व्रजेत् ॥११६॥

अर्थ–लोमशऋषि बोले जो कोई राममंत्रको लेकर फिर अन्य मंत्र लेतेहैं उनका उद्धार नहीं है जबतक चन्द्र सूर्य दोनों हैं तबतक नरकसे निकलना कठिन है । श्रीराममन्त्रको लेकर जो अन्य मन्त्रको लेनेकी इच्छा करतेहैं वह मंत्र लेकर पापके भागी होतेहैं और मंत्र देनेवाले नरकमें जातेहैं । इसवास्ते राममन्त्रवालेको अन्यं मन्त्र कभी न लेना चाहिये ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ पुनरपि पुष्करसंहितायाम् ।

गृहीत्वा वैष्णवात्सम्यङ्मंत्रराजं षडक्षरम् ॥
अन्यमंत्रं जिघृक्षेच्चेद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ११७ ॥

पुनरपि सांकर्षणे–

लब्ध्वा षडक्षरं मंत्रं रामस्य परमात्मनः ॥
मंत्रांतरान्प्रयत्नेन वर्जयेन्मंत्रतत्त्ववित् ॥ ११८ ॥

अर्थ–वैष्णवसे मंत्रराज षडक्षर लेकर यदि अन्य विष्णु नारायणादि मन्त्रको लेवे तो रौरव नरकको जातेहैं । इससे श्रीराम परमात्मा परब्रह्मके षडक्षर मन्त्रराजको लेकर अन्य मन्त्रको यत्नपूर्वक मन्त्रतत्त्वके ज्ञाता वर्ज देवे यदि देवे तो दोष है ॥ ११७॥ ११८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! आपके कृपासे सब संदेह दूर होगया अब आप यह

कहिये कि, ब्राह्मण क्षत्रियसे क्षत्रिय वैश्यसे वैश्य शूद्रसे मन्त्रोपदेश लेवे कि नहीं ? (उत्तर) हे शिष्य ! अंतरोद्भव मन्त्र लेनेमें दोष है यथा मन्त्रसारे–

ब्राह्मणं क्षत्रियो दद्यात्कुष्ठव्याधिः प्रवर्तते ॥
क्षत्रियं वैश्यो दद्याच्च स्त्रियो हानिः प्रजायते ॥
वैश्यं शूद्रोपि दद्यात्तु वंशहीनो भवेन्नरः ॥ ११९ ॥

अर्थ–ब्राह्मणको क्षत्रिय मन्त्र देवे तो कुष्ठव्याधि होतेहैं और क्षत्रियको वैश्य मंत्र देवे तो स्त्रीनाश होतीहै वैश्यको शूद्र मंत्र देवे तो वंशनाश होताहै इससे विपरीत दीक्षा देना दोष है ॥ ११९ ॥ और भरद्वाजसंहितामें भी कहाहै यथा–

न जातु मंत्रदा नारी न शूद्रो नांतरोद्भवः ॥
नाभिशस्तो न पतितः कामकामोप्यकामिनः १२०
सप्तपुरुषविज्ञेये संततैकांतनिर्मले ॥
कुले जातो गुणैर्युक्तो विप्रः श्रेष्ठतमो गुरुः ॥१२१॥

अर्थ–मन्त्रके देनेवाली स्त्री नहीं है न शूद्रको अधिकार है न (अंतरोद्भव) याने ब्राह्मणको क्षत्रिय मंत्र देनेवाला क्षत्रियको वैश्य देनेवाला वैश्यको शूद्र देनेवाला गुरु नहीं है और अभिशस्त जो तीनों लोकसे दूषित और निंदनीय है अथवा वृथा दोष करके युक्त हैं उनसेभी मंत्रोपदेश न लेवे पतितसे न लेवे कामी (विषयी) से नहीं लेवे अकामी संन्यासी आदि विरक्तसे मंत्र न लेवे. यह पूर्वोक्त ७ पुरुषको मंत्र देनेका अधिकार नहीं है मंत्र उससे लेवे जिनकी ७ पुरुषासे शुद्ध हों एकान्तिक निर्मल हों अच्छे कुलमें जन्म लिये हों संपूर्ण गुणकरके युक्त सोई ब्राह्मण गुरु होसक्तेहैं अन्यथा नहीं ॥ १२० ॥ १२१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! शैव शाक्त गाणपत्य सौर किसको कहतेहैं ? (उत्तर) हे शिष्य ! जो शिवमंत्र लेकर

शिवजीकी भक्ति उपासना करे उसको शैव कहतेहैं और जो देवी दुर्गा आदिशक्तिका मंत्र लेकर शक्तिकी भक्ति उपासना करे उसको शाक्त कहतेहैं जो गणेशजीके मंत्र लेकर गणेशजीकी उपासना करे उसको गाणपत्य कहतेहैं और जो सूर्यभगवान्के मंत्रादि लेकर उपासना करतेहैं उनको सौर कहतेहैं. इसी प्रकारसे विष्णु भगवान्के मंत्रोपासनादि करनेसेही वैष्णव कहेजातेहैं.हे शिष्य ! अपने २ मंत्रानुसारही उपासना करनी चाहिये. (प्रश्न) हे स्वामीजी ! शैव शाक्त शिष्यको रामतारकमंत्र देतेहैं सो देना चाहिये कि नहीं ? (उत्तर) हे शिष्य ! यह बात केवल मिथिलासे लेकर भागलपुर मुंगेर जिला प्रांतमें है बाकी अन्य देशमें नहीं है और गुरुपरंपरामंत्रको देना ही सबका धर्म है जैसे कि, शैव होकर शिवमंत्र देवे शाक्त होकर शक्तिमंत्र देवे वैष्णव होकर विष्णुमंत्र देवे अर्थात् जो मंत्र आप गुरुसे लेवे वही मंत्र शिष्यको देना अधिकार है और जो मूर्ख सबको सब मंत्र देताहै वह तो पूरा दुकानदार है इसीको धूर्त कहतेहैं हे शिष्य ! तुम स्वयं अपने मनमें विचार करो कि, गुरु तो घोर शैव शाक्त है बकड़ा भैंसाके खानेवाले और शिष्य हैं वैष्णव भला यह अन्याय कैसे हो सक्ता है फिर भी देखो शिष्य होकर गुरु उच्छिष्ट लेगा गुरु है मांसके खानेवाले और शिष्य है वैष्णव भला वैष्णव धर्म कहां रहा हाय २ बड़ीही मूर्खताकी बात है धन्य है अन्धोंकी परंपरा. हे शिष्य ! शैव शाक्तसे मंत्र लेकर कैसे वैष्णव होसक्तेहैं जैसे गधा गधीके संतान कैसे गौ बैल होसक्तेहैं यह बड़ी आश्चर्यकी बात है. हे शिष्य ! इन सर्वभक्षी राक्षस गुरुसे सर्वदा बचना चाहिये इन पाखण्डियोंके फेरमें कभी न परना चाहिये काहेसे कि, जीवके हत्या करनेवाले राक्षसको गुरु नहीं कहतेहैं गुरु तो ज्ञानीको कहतेहैं ए तो कलियुगिया गुरु है यथा—"हरइ शिष्यधन शोक न हरई । सो गुरु घोर नरकमें परई ॥गुरु शिष अंध बधिर कर लेखा । एक न सुने एक नाहिं देखा ॥ लोभी गुरू लालची

चेला। दूनों नरकमें ठेलम ठेला॥ घर घर मंत्र जो देत फिरत हैं महिमा कै अभिमाना। गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े अंतकाल पछिताना" यथा पुरुषोत्तममाहात्म्ये—

नानुव्रजति यो मोहाद्व्रजंतं जगदीश्वरम्॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्मापि स भवेद्ब्रह्मराक्षसः॥ १२२॥
नानारूपधरा दूता जीवानां ज्ञानहारकाः॥
कालाज्ञां समनुप्राप्य विचरंति महीतले॥ १२३॥
अंतश्शैवा बहिश्शाक्ताः सभामध्ये च वैष्णवाः॥
नानारूपधरा कौला विचरंति महीतले॥ १२४॥

अर्थ—जो मूर्ख मोहसे जगदीश्वरको नहीं प्राप्त होतेहैं याने ईश्वरके भजन स्मरण नहीं करतेहैं वह ज्ञानी भी ज्ञानरूप अग्निसे सब शुभाशुभ कर्मको जलाकर भी मोक्षको प्राप्त नहीं होतेहैं॥ किंतु ब्रह्मराक्षस ही होतेहैं भाव ईश्वरसे विमुख होनेपर ज्ञानीको भी कल्याण नहीं है॥ कालके आज्ञा पाकर यमराजके दूत नानारूप धारण करके जीवके ज्ञाननाश करनेवाले पृथ्वीमें विचरतेहैं॥ अंतःकरणसे शैवहैं बाहर चिह्न शाक्तका है सभाके बीचमें वैष्णव बनजातेहैं॥ इन्हीको कौल कहतेहैं॥ १२२–१२३–१२४॥ भाव बकड़ा भैंसाके काटनेवाले मद्यमांसके खानेवाले सब राक्षस और यमराजके दूत हैं घोर तमोगुणी नरकमें जानेवाले हैं. पुनरपि विष्णुधर्मप्रकाशे—

कृते तु दानवाः प्रोक्तास्त्रेतायां राक्षसाः स्मृताः॥
द्वापरे दुष्टराजानः कलौ दैत्याश्च ब्राह्मणाः॥ १२५॥

अर्थ—सत्य युगमें दानव कहेजातेहैं त्रेतामें वही राक्षस कहेजातेहैं और द्वापरमें वही राक्षस दुष्ट राजा याने शिशुपाल दंतवक्र कंसादि भयेहैं और कलियुगमें दैत्य दानव राक्षस ब्राह्मणही हैं यहांपर विष्णु-

द्रोही ब्राह्मण जो कि कण्ठीतिलकके निंदावाले हैं उनको कहाहै सब ब्राह्मणको नहीं ॥ १२५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! जो पुस्तकमें देखकर मंत्र इयाद कियाहै वे वैष्णव हो सक्तेहैं कि नहीं? सो कहिये (उत्तर) े शिष्य! ऐसा हो तो सब संसार वैष्णव होजावे फिर गुरु शिष्य होनेकी जो शास्त्रकी मर्यादा है सब ही नष्ट होजावेगी फिर चारों सम्प्रदाय कलियुगमें क्यों हुआहै इससे विना गुरुके मंत्र निष्फल होताहै और अनर्थकारक है यथा अग्निपुराणे २९३ अ०

यदृच्छया श्रुतं मंत्रं छलेनाथ बलेन वा ॥
पत्रे स्थितं च गाथां च जनयेद्व्यनर्थकम् ॥१२६॥

अर्थ-विना इच्छावालेको मंत्र सुनाना और कोई छलसे मंत्र ललेना अथवा बलकरके मंत्र लेना और पुस्तकमें देखकर इयाद करलेना अथवा किसीके मुखसे सुनकर कण्ठ करलेना यह सब मंत्र अनर्थको उत्पन्नकरनेवाले हैं ॥ १२६ ॥ इससे विना गुरुके मंत्र फलदायक नहीं होताहै. हे शिष्य! जो मूर्ख शैव शाक्त पोथीमें देखकर राममंत्र देते हैं उनकी क्या गति होतीहै इसलिये विना संप्रदायके गुरु नहीं करना चाहिये यथा शांडिल्यसंहिताभक्तिखण्डे-

संप्रदायं विना मंत्रस्संप्रदायं विना गुरुः ॥
संप्रदायं विना नाम सर्वं भवति निष्फलम् ॥१२७॥

पुनः गौतमीयतंत्रे-

धर्मार्थकाममोक्षाणामालयः सांप्रदायिकः ॥
संप्रदायविहीना ये मंत्रास्ते निष्फला मताः ॥१२८॥

अर्थ-संप्रदाय विना मंत्र सम्प्रदाय विना गुरु सम्प्रदाय विना नाम रखना सब वृथा है और निष्फल होतेहैं इस लिये वैष्णव संप्रदायके गुरु अवश्य करना चाहिये गौतमीय तंत्रमें कहाहै कि, अर्थ, धर्म, काम, मोक्षके स्थान है सांप्रदायिक (संप्रदाये भवः सांप्रदा-

यिकः) अर्थात् संप्रदायमें जो हो उसको सांप्रदायिक कहते हैं संप्रदाय विना जे पुरुष हैं उनके मन्त्र यन्त्र पूजा पाठ सब ही वृथा है ॥ १२७–१२८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! हमारे देश मिथिला प्रांत तथा भागलपुर मुंगेर जिलाके प्रांतमें संप्रदायके हाल भी नहीं जानते हैं सो क्यों ? (उत्तर) हे शिष्य! उस देशमें घोर तमोगुणी लोग निवास करतेहैं और कपोलकल्पित ग्रंथका प्रचार विशेष है इस लिये सबका स्वभाव राक्षसी हो रहाहै वो संप्रदायका हाल क्या जाने वो लोग तो केवल बकड़ा भैंसा काटनेका संप्रदाय जानते हैं वो लोग द्वैताद्वैत विशिष्टाद्वैत शुद्धाद्वैतके हालभी नहीं जानतेहैं। हे शिष्य ! अगर संप्रदायका हाल बूझो तो मुख फारके बकर २ देखेंगे और मंत्र माँगो तो राम कृष्ण नारायण याने सब मन्त्रोंके खजाना खोलदेंगे ऐसे मूर्ख होतेहैं खानेको बकडा भैंसा देनेको रामतारक मंत्र हाय २ धिक्कार है ऐसे गुरुको और जो मूर्ख कल्याणवास्ते इनसे मंत्र रामतारक लेतेहैं उन शिष्यकोभी बार २ धिक्कार है हे शिष्य ! ऐसे कसाई गुरुसे कल्याण होना दुर्लभ है यथा भजन श्रीकबीरजीके–"संतो पांडे निपुन कसाई। बकरा मारि भैंसाको धावै दिलमें दया न आई॥ करि असनान तिलक दे बैठे विधिसो देवि पुजाई। आतमराम पलकमें विनसै रुधिराकि नदी बहाई ॥ अति उत्तम ऊंचे कुल कहिये सभामांझ अधिकाई। इनते दीक्षा सब कोइ मांगे हंसि आवे मोहि भाई ॥ गाय वधे तेहि तुरका कहिये उनते वे का छोटा। कहै कबीर सुनो हो संतो कलिके ब्राह्मण खोटा ॥ " (प्रश्न) हे स्वामीजी ! पाखण्डी ब्राह्मणका लक्षण क्या है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! पाखण्डीके लक्षण यथा पद्मपुराणे उत्तरखण्डे २३५ अध्याये—

अवैष्णवस्तु यो विप्रः स पाखण्डः प्रकीर्तितः ॥
शिखोपवीतत्यागी च विकर्मस्थ इतीरितः ॥ १२९॥
येऽन्यं देवं परत्वेन वदंत्यज्ञानमोहिताः ॥

नारायणाज्जगन्नाथात्ते वै पाखण्डिनः स्मृताः १३०॥
कपालभस्मास्थिधरा ये ह्यवैदिकलिंगिनः ॥
ऋते वनस्थाश्रमाच्च जटावल्कलधारिणः ॥१३१॥
अवैदिकक्रियोपेतास्ते वै पाखण्डिनः स्मृताः ॥
शंखचक्रोर्ध्वपुंड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः ॥ १३२ ॥
रहिता ये द्विजा देवि ते वै पाखण्डिनः स्मृताः ॥
यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ॥
सममन्यैर्निरीक्षेत स पाखण्डी भवेत्सदा ॥ १३३॥

अर्थ—श्रीशंकर वचन पार्वतीसे है कि, जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं है वही पाखण्डी है और शिखा सूत्रके त्यागनेवाला वही विकर्म है याने पतित है । जो मूर्ख अज्ञानसे मोहित होकर अन्य देवताहिके परत्व याने बड़प्पन वर्णन करतेहैं वह निश्चय पाखण्डी हैं। कपाल भस्म हड्डी आदि वेदविरुद्ध धर्म चिह्नके धारण करनेवाले हैं और वानप्रस्थाश्रमको छोडकर जो अन्य जटा भस्म धारण करनेवाले पाखण्डी हैं। भगवत्प्रिय जो शंख चक्र ऊर्ध्वपुण्ड्र कण्ठी माला आदिक चिह्नसे जो रहित हैं हे देवि ! वही सब पाखण्डी हैं । जो मूर्ख ब्रह्मा शिव गणेश देवी दुर्गा आदिको नारायणके बराबर देखते हैं मानतेहैं वही मूर्ख पाखण्डी कहेहैं उनके बराबर दुष्ट अधर्मी दूसरे नहीं हैं ॥ १२९–१३०–१३१–१३२–१३३–(प्रश्न) हे स्वामीजी! अवैष्णवके हाथके भोजन करे कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य! अवैष्णवके हाथके सब वस्तु वर्जित है यथा गौरीतंत्रे ।

कृष्णमंत्रविहीनस्य पापिष्ठस्य दुरात्मनः ॥
श्वानविष्ठासमं चान्नं जलं च मदिरासमम् ॥१३४॥

पुनरपि पाद्मोत्तरखण्डे-

अवैष्णवास्तु ये विप्राश्चाण्डालादधमाः स्मृताः ॥
तेषां संभाषणस्पर्शसोमपानादि वर्जयेत् ॥ १३५ ॥

पुनः स्कांदपुराणे ।

अवैष्णवगृहे भुक्त्वा पीत्वा वाऽज्ञानतोपि वा ॥
शुद्धिश्चान्द्रायणे प्रोक्ता इष्टापूर्तं वृथा सदा ॥ १३६ ॥

अर्थ-जो पापी दुष्टात्मावाले श्रीकृष्णमंत्रसे हीन हैं उनके हाथके अन्न श्वान (कुत्ता) की विष्ठासम है और जल मदिराके समान है । जो ब्राह्मण अवैष्णव हैं सो सब चाण्डालसे भी अधम हैं उन सबसे भाषण स्पर्श सोमपानादिक वर्ज देवे । स्कांद पुराणके वचन है कि, अवैष्णवके घरमें भूलसे खा लेवे पी लेवे तो शुद्धिके वास्ते चान्द्रायण व्रत करे नहीं तो उनके इष्ट (यज्ञादि) कर्म और पूर्त (कूपतटाकादि) कर्म करना सब वृथा है हे शिष्य ! इसी प्रकारके बहुत प्रमाण हैं ग्रंथविस्तारके भयसे नहीं लिखतेहैं थोरहीमें जानलेना चाहिये ॥ १३४-१३५-१३६-(प्रश्न) हे स्वामीजी ! संप्रदाय किसको कहतेहैं ? (उत्तर) हे शिष्य ! गुरुपरंपरासे जो वेदानुकूल मंत्रादिसिद्धान्त चलाआया है उसको संप्रदाय कहतेहैं । यथाऽमरकोषे-

आम्नायः संप्रदायः ।

आम्नाय नाम वेद संप्रदाय दो नाम करके आचार्योंके परंपराको जानना चाहिये और भी संप्रदायके अर्थ शास्त्रमें ऐसा कहाहै यथा-

सम्यक् प्रकृष्टं दानं च मंत्रादेः श्रुतिमूलकम् ॥
इत्यर्थः संप्रदायेति शब्दस्योक्तः पुरातनैः ॥ १३७ ॥

अर्थ-वेदकरके प्रामाणिक मंत्रादिको विधिपूर्वक प्रकृष्ट करके दान करे याने विधिपूर्वक शिष्यको उपदेश करे ऐसा अर्थ संप्रदा-

यशब्दका प्राचीन लोगोंने कहाहै ॥ १३७ ॥ और संप्रदाय चार हैं सो पाद्मोत्तरखण्डमें कहाहै यथा–

कलौ खलु भविष्यंति चत्वारः संप्रदायकाः ॥
श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः ॥१३८॥

अर्थ–कलियुगमें निश्चयकर चार संप्रदाय होयँगे श्रीसंप्रदाय १ ब्रह्मसंप्रदाय २ रुद्रसंप्रदाय ३ सनकादिक ४ ए चारों संप्रदाय पृथ्वीके पवित्र करनेवाले हैं ॥ १३८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! इन चारों संप्रदायमें प्रधान २ आचार्य कलियुगमें कौन २ हुयेहैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य! श्रीसंप्रदायमें प्रबलाचार्य श्रीरामानुजस्वामीजी हुयेहैं और ब्रह्मसंप्रदायमें प्रधानाचार्य श्रीमध्वाचार्य स्वामीजी हुयेहैं जो कि स्वयं श्रीहनुमानजीके अवतार रहे ॥ और रुद्रसंप्रदायमें मुख्याचार्य श्रीविष्णुश्यामजी हुयेहैं तैसही सनकादिकसंप्रदायमें प्रधानाचार्य श्रीनिंबादित्यस्वामीजी हुयेहैं जो कि स्वयं सूर्य्यावतार रहे. हे शिष्य! एही चारों संप्रदाय संसारमें प्रसिद्ध हैं. (प्रश्न) हे स्वामीजी! शंकराचार्य संप्रदायमें नहीं है क्या (उत्तर) हे शिष्य! शंकराचार्यके विषयमें बार बार क्या पूछतेहो शंकराचार्य तो केवल विष्णुभगवानके आज्ञा पाकर अवतार लियारहा और महापाषण्डमतको चलाकर सब संसारको नष्ट किया इसलिये उनको त्यागनाहीं उत्तम है ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! ए आचार्य सब किनके अवतार हुयेहैं सो कहिये ? (उत्तर) हे शिष्य! सदाशिवसंहितामें कहाहै कि—

भविष्यंति कलौ घोरे जीवा हरिबहिर्मुखाः ॥
रामाऽऽज्ञया हनूमान् वै मध्वाचार्यः प्रभाकरः १३९॥
शंकरः शंकरः साक्षाद्व्यासो नारायणः स्वयम् ॥
शेषो रामानुजो रामो रामदत्तो भविष्यति॥१४०॥

नानको ध्वानकश्चैव तंतुवायश्च चर्मकृत् ॥
एते पाषण्डिनो ज्ञेयाः कलौ वेदविदूषकाः ॥१४१॥

अर्थ-महाघोर कलियुगमें सब जीव ईश्वरसे विमुख होजायँगें तब श्रीरामजीके आज्ञासे निश्चयपूर्वक हनूमानजी मध्वाचार्यजीके अवतार होवेंगे ॥ शंकरजी साक्षात् शंकराचार्य हैं और व्यासजी स्वयं नारायण हैं शेषजी श्रीरामानुजस्वामी हैं और श्रीरामजी स्वयं रामदत्त मिश्र करके प्रयागराजमें होवेंगे. हे शिष्य! एही रामदत्त मिश्र राघवानन्द स्वामीके शिष्य होनेसे श्रीरामानन्दस्वामी श्रीराममंत्रके प्रवर्तकाचार्य हुयेहैं ॥ नानकजी पंजाबमें हुयेहैं, ध्वानक (धुनियां) दादूरामदास तंतुवाय (जुलहा) श्रीकवीरजी और चर्मकृत् (चमार) रैदास भक्त इन सबको कलियुगमें वेदके विरोधी पाषण्डी जानना ॥ १३९-१४०-१४१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! नानकजी दादूराम कवीरजी रैदासजी ए सब तो वड़े भारी महात्मा श्रीरामनामके जापक हुयेहैं फिर इन सवको वेदके दूषण देनेवाला याने वेदविरोधी पाषण्डी शास्त्रकारने क्यों कहा? (उत्तर) हे शिष्य! ए सब पंथाई हुयेहैं इसलिये वेदविरोधी कहा काहेसे कि, इन सबके पंथके जो साधुलोग हैं वह सबही नास्तिक हैं न वेद माने न शास्त्र पुराण माने न तीर्थ न व्रत न अवतार माने न मूर्तिपूजाही माने इसलिये वेदविरोधी कहा. हे शिष्य! यहांपर इनके पंथावलंबी साधुवोंको वेदविरोधी कहाहै कुछ नानकजी कबीरजी दादूराम तथा रैदासजी इन सबको नहीं कहाहै ए लोग तो पूरे सिद्ध होगयेहैं और बड़े रामनामके जापक हुयेहैं ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! श्रीरामानंद स्वामीजी कहां हुयेहैं सो सब कहिये (उत्तर) हे शिष्य! श्रीरामानन्दस्वामीजी प्रयागराजमें कान्यकुब्ज ब्राह्मणके यहां माघवदि ७ सप्तमीके दिन अवतार लेकर और द्वादश शिष्योंके सहित सर्वत्र विजय करके सर्वोपरि श्रीराममन्त्रका प्रचार किया (प्रश्न) हे स्वामीजी! १२ बारह शिष्य कौन२

हुये सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! प्रथम शिष्य ब्रह्माजीके अवतार अनन्तानन्दजी, दूसरा शिष्य नारदके अवतार सुरसुरानन्दजी, ३ शिष्य शिवजीके अवतार सुखानन्दजी, चौथा शिष्य सनत्कुमारजीके अवतार नरहरियानन्दजी, ५ शिष्य कपिलदेवके अवतार योगानन्दजी, ६ शिष्य पीपाजी, ७ वां शिष्य प्रह्लादजीके अवतार बीरजी हुये, ८ शिष्य भावानन्द, ९ शिष्य सेनाभक्त, १० शिष्य धना भक्त ११ शिष्य गालवानन्दजी, १२ शिष्य रैदास, १३ शिष्या पद्मावती हुईं यह सब कथा अगस्त्यसंहिताके भविष्यखण्डमें प्रसिद्ध है विशेष देखना हो तो हमारे पूज्यपाद पण्डित श्रीरामनारायणदासजीकृत (रामानन्दजन्मोत्स ग्रंथ देखो जिसमें विस्तारसे सर्व वृत्तांत वर्णन है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! स्त्री पुरुष दोनों मिलकर एक गुरुसे दीक्षा लेवें कि नहीं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! इस बातकी केवल लौकिक संदेह है कि एक गुरुसे मंत्र लेनेसे गुरुभाई गुरुबहिनका संबंध होजाताहै इसलिये एक गुरुसे दीक्षा नहीं लेना चाहिये इत्यादि कहतेहैं सो कहना वृथा है अगर इहांपर इस तरहसे विरोध मानाजावे तो शाश श्वशुरमें भी तो मातापिताका ही भाव माना जाता है तब तो यहां भी स्त्री पुरुषमें भाई बहिनका नाता होगया फिर स्त्रीभाव मानना दोष होगा । इसवास्ते यहांपर लौकिक संबंध मानना साधारण बात है, शास्त्रकी आज्ञा मानना परम धर्म है और शास्त्रमें सर्वत्र एकही गुरु होना लिखाहै यथा—शाण्डिल्यसंहितायां भक्तिखण्डे शांण्डिल्य ऋषिवचनम्—

पुत्रो भवति सच्छिष्यः पुत्री भवति चांगना ॥
पूजायां भक्तवर्योऽसौ यदि स्याद्धरिभावना॥ १४२॥
दंपत्योरेकगुरुता लोके यद्यपि गर्हिता ॥
शास्त्रतो न विरुद्धैषा यतो जायाऽर्द्धदेहगा॥ १४३॥

दंपत्योर्द्धर्मकार्येषु सहैवाधिकृतिर्यतः ॥
प्रतिज्ञावचनं पाणिग्रहे नार्यास्तथा कृतम् ॥ १४४ ॥
कचेनोदरवासेन देवयानी निराकृता ॥
दत्ता सुता च मुनिना शिष्याय चन्द्रशर्मणे॥ १४५॥

अर्थ-सुपात्र शिष्य पुत्र होता है और शिष्यकी स्त्री पुत्री होती है यादि दोनों स्त्रीपुरुष भगवतभावना करके युक्त हों और भगवत्पूजामें दोनों श्रेष्ठ हों तो स्त्री पुरुषको एक ही गुरु होना योग्य है यद्यपि यह बात लोकमें निंदनीय है कि एक गुरुसे स्त्री पुरुष मंत्र लेवे तो गुरुभाई बहिनका सम्बन्ध होजाता है, सो यह शास्त्रमें विरुद्ध नहीं है । काहेसे कि स्त्री अर्द्धांगी है उससे दोष नहीं है धर्मकार्यमें, पुण्यकार्यमें, पुरुष स्त्रीके सहित कार्य करते हैं काहेसे कि विवाहकालमें स्त्री पुरुष दोनोंकी पाणिग्रहणमें प्रतिज्ञा वचन करी जाती है कि सब कर्मोंकी साथी हैं फिर दीक्षामें क्यों भिन्न होगा । इसपर दृष्टांत देते हैं कि कचमुनिने अपनी देवयानी पुत्रीको आनन्दपूर्वक अपने शिष्य चन्द्रशर्मा मुनिको दिया यादि गुरुभाई बहिनका सम्बन्ध होता तो क्यों देते ॥ १४२-१४५ ॥ यह कथा सर्वत्र पुराणोंमें प्रसिद्ध है, इससे दोष नहीं है सो कहते हैं ।

पूर्त्तपुण्येषु सर्वत्र ग्रंथिबंधनपूर्वकम् ॥
दंपत्योरेकगुरुता शास्त्रे लोके च दृश्यते ॥ १४६ ॥
तीर्थस्नाने तथा कन्यादानादौ तु सुरालये ॥
प्रतिष्ठायां मखेऽन्यत्र तपोरेको गुरुर्भवेत् ॥ १४७ ॥
याजकः पालको राजा वृत्तिदो रक्षको गुरुः ॥
कन्याप्रदः पिता प्रोक्त एक एव तयोरयम् ॥ १४८ ॥

मंत्रे ज्ञाने धर्मकार्ये उपदेशे महात्मनाम् ॥
दंपत्योरेकगुरुता श्रेष्ठा नैव विदूषिता ॥ १४९ ॥

अर्थ-पूर्त्त (कूप बावड़ी तटाकादि) कर्मोंमें सर्वत्र ग्रंथिबन्धनपूर्वक स्त्री पुरुषकी एकही गुरु शास्त्रमें और लोकमें देखाजाता है । तीर्थ स्नानमें तथा कन्यादानके आदिमें देवमंदिरमें मूर्तिकी प्रतिष्ठाओंमें यज्ञमें और भी शुभकामोंमें एकही गुरु होना चाहिये । क्योंकि यज्ञ-कर्ता पालन करनेवाले राजा वृत्तिके देनेवाले रक्षा करनेवाले दीक्षा देनेवाले गुरु कन्यादान करनेवाले पिता यह सब एकही होना चाहिये इससे दीक्षामें, ज्ञानोपदेशमें, धर्मकार्योंमें, महात्माओंके उपदेश अर्थात् कथा पुराणादिकमें स्त्री पुरुषको एक ही गुरु होना चाहिये इसमें श्रेष्ठ पुरुष दोष नहीं देते हैं भाव मूर्ख लोग दोष देते हैं॥ १४६-१४९॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! शिष्यमें और पुत्रमें कुछ भेद भी है कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! पुत्रमें और शिष्यमें कोई भेद नहीं है यह प्रमाण ब्रह्मवैवर्तपुराणमें प्रसिद्ध है यथा-

यथा पुत्रस्तथा शिष्यो न भेदः पुत्रशिष्ययोः ॥
तर्पणे पिण्डदाने च पालने परितोषणे ॥ १५० ॥
यथाऽग्निदाता पुत्रश्च तथा शिष्यश्च निश्चितम् ॥
इतीदं कण्वशाखायामुवाच कमलोद्भवः ॥ १५१ ॥

अर्थ-जैसा पुत्र है तैसा शिष्य है पुत्र शिष्यमें भेद नहीं है तर्प-णमें, श्राद्धमें, दानमें, पालन पोषण करनेमें दोनों बराबर हैं । जैसा अग्निदाता पुत्र है, तैसा ही शिष्य भी अधिकारी है ऐसा साम-वेदोक्त कण्वशाखामें ब्रह्माजीने कहाहै ॥ १५० ॥ १५१ ॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! पुत्र पितासे, स्त्री पतिसे मंत्र लेवे कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! जब नारदजीने अपने पिता ब्रह्माजीसे मंत्रोपदेश मांगा तब ब्रह्माजी बोले यथा ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मखण्डे २४ अध्याये-

पत्युर्मंत्रं पितुर्मंत्रं न गृह्णीयाद्विचक्षणः ॥
विविक्ताश्रमिणां चैव न मंत्रः सुखदायकः॥१५२॥
निषेकाल्लभ्यते मंत्रो गुरुर्भर्त्ता च कामिनी ॥
विद्यासुखं भयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया नच॥१५३॥

अर्थ-पति मन्त्रको स्त्री, पितामन्त्रको पुत्र, चतुर न ग्रहण करे और विविक्ताश्रमी (संन्यासी) से मंत्र न लेना. सुखदायक नहीं है । निषेकसे अर्थात् गर्भहीसे मंत्र गुरु स्वामी और पति स्त्री विद्या सुख दुःख भय प्राप्त होताहै, पुरुषार्थ और स्वइच्छासे नहीं ॥ १५२ ॥ ॥ १५३ ॥ इससे हे शिष्य ! स्त्रीको पतिसे, पुत्रको पितासे, मंत्र नहीं लेना चाहिये (प्रश्न) हे स्वामीजी ! मंत्र किस विधिसे लेना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! स्त्री पुरुष दोनोंको ग्रंथिबंधनपूर्वक एक वेदीपर अथवा शुद्ध स्थानमें पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर बैठावे, आप गुरु पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर क्रमशः बैठकर चार संस्कार प्रथम करके पश्चात् पुरुषके दक्षिण कानमें स्त्रीको बांयें कानमें तीन बार पूर्णचित्त होकर स्पष्ट मंत्र देवे (प्रश्न) हे स्वामीजी ! कब मंत्र लेवे किस मासमें, किस दिनमें, किनतिथियोंमें सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! भगवत्के शरणमें आनेका नियम नहीं है जब ही सद्गुरु मिलजावे तब ही मंत्र लेलेना चाहिये दीक्षा लेनेमें देर न करे काहेसे कि शरीर अनित्य है न जाने कब छूट जावे हे शिष्य ! दीक्षामें देर करनेसे कृष्णदत्त ब्राह्मण मरकर हस्ती भया रहा पीछे श्रीनारदजीके उपदेशसे उद्धार हुआ इससे दीक्षामें देर नहीं करना चाहिये और दिन तिथि मासका भी निर्णय शास्त्रमें कियाहै यथा प्रमाणम् अगस्त्य-संहितायां १७ अध्याये अगस्त्य उवाच—

मधुमासे भवेद्दुःखं माधवे रत्नसंचयः ॥
मरणं भवति ज्येष्ठे आषाढे बंधुदर्शनम् ॥ १५४ ॥

समृद्धिः श्रावणे नूनं भवेद्भाद्रपदे क्षयः ॥
प्रजानामाश्विने मासि सर्वतः शुद्धिमेवहि ॥१५५॥
ज्ञानं स्यात्कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि ॥
पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्द्धनम् ॥
फाल्गुने च समृद्धिः स्यान्मलमासं विवर्जयेत् १५६

अर्थ-चैत्रमें दीक्षा लेवे तो दुःख हो वैशाखमें लेवे तो द्रव्यका संचय हो ज्येष्ठमें लेवे तो मरण होतेहैं आषाढमें लेवे तो बंधु दर्शन हो श्रावणमें लेवे तो समृद्धि हो भाद्रपदमें क्षय (नाश) हो आश्विनमें लेवे तो प्रजाओंकी वृद्धि और सब प्रकारसे शुद्धि होतीहै कार्तिकमें लेवे तो ज्ञान प्राप्त हो मार्गशीर्ष (अगहन) में लेवे तो सुख हो पौषमें लेवे तो ज्ञाननाश हो माघमें लेवे तो बुद्धि बढे फाल्गुनमें समृद्धि प्राप्त हो मलमासमें सब शुभ कार्य वर्जित है ॥ ५४-५६ ॥

रवौ गुरौ सिते सोमे कर्तव्यं बुधशुक्रयोः ॥
अश्वनीरेवतीस्वातीविशाखाहस्तभेषु च ॥ १५७ ॥
पुष्यः शतभिषक् चैव श्रवणार्द्राधनिष्ठिकाः ॥
ज्येष्ठोत्तरात्रयेष्वेवं कुर्य्यान्मंत्राभिषेचनम् ॥ १५८॥
पूर्णिमा पंचमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ॥
द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं षष्ठ्यामपि विशेषतः॥१५९॥
त्रयोदशी च नवमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥ १६०॥

अर्थ-रविवारमें गुरुवारमें शुक्लपक्षमें सोमवारमें बुध शुक्रवारमें दीक्षा लेना चाहिये अश्वनी, रेवती, स्वाती, विशाखा, हस्त नक्षत्र, पुष्य नक्षत्र, शताभिषा और श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठिका. ज्येष्ठा, उत्तरा-त्रयेषु अर्थात् उत्तराफाल्गुनी उत्तरषाढा उत्तराभाद्रपदमें इतने

नक्षत्रोंमें दीक्षा लेना चाहिये और पूर्णिमा, पंचमी, द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी, षष्ठी, त्रयोदशी और नवमी इन तिथियोंमें दीक्षा लेना चाहिये ए तिथि सब शुभकामोंमें प्रशस्त हैं सब शुभकाम करना चाहिये ॥ १५७-१६० ॥

सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति कश्चन ॥
सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषणं भवेत् ॥ १६१ ॥
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनंतफलदं भवेत् ॥
न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥ १६२ ॥
ददातीष्टं गृहीतं च तस्मिन्काले मुनीश्वर ॥
सिद्धिर्भवति मंत्रस्य विनायासेन वेगतः ॥
अतस्तत्रैव रामस्य मंत्रतीर्थाभिषेचनम् ॥ १६३ ॥

अर्थ-सूर्यग्रहणकालके समान काल कोईभी नहीं है सूर्यग्रहणकालमें तो अन्य तिथिवारादि खोज करनेको काम नहीं है उस सूर्यपर्वमें जो कुछ शुभ काम करे सो सब अनंत फलदायक है। सूर्यग्रहणमें मास तिथि वार नक्षत्रादिके शोधन करनेका आवश्यक नहीं हैं उस कालमें मंत्र लेतेही मात्रमें इष्टफलको देतेहैं और विना परिश्रमही शीघ्र मंत्रकी सिद्धि होजातीहै इससे उसही सूर्यग्रहणमें राममंत्रका अभिषेक याने उपदेश करना चाहिये ॥ १६१-१६३ ॥

हे शिष्य ! गौतमीयतंत्रमेंभी ऐसेही कहाहै यथा ९ अध्याये-

मासपक्षतिथिवारं नक्षत्रादीन्विशोधयेत् ॥
मंत्राऽरंभस्तु चैत्रे स्यात्समस्तपुरुषार्थदः ॥ १६४ ॥
वैशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे तु मरणं ध्रुवम् ॥
आषाढे बंधुनाशः स्यात्पूर्णायुः श्रावणे भवेत् १६५

प्रजानाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसंचयः ॥
कार्तिके मंत्रसिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत् १६६
पौषे तु शत्रुपीडा स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम् ॥
फाल्गुने सर्वकामाः स्युर्मलमासं विवर्जयेत् १६७॥
दक्षकर्णे वदेन्मंत्रं त्रिवारं पूर्णमानसः ॥
मंत्रार्थं मंत्रबीजं वै तच्छक्तिं तत्फलानि च॥ १६८॥

अर्थ–मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्रादिको शोधन करे पीछे मंत्र देवे तहां मंत्रारंभ चैत्रसे करे अर्थात् चैत्रमें दीक्षा लेवे तो पुरुषार्थ प्राप्त हो वैशाखमें रत्नलाभ हो ज्यष्ठमें दीक्षा लेवे तो अवश्य मरण हो आषाढमें लेवे तो भ्राता मरे श्रावणमें पूर्णायु हो भादोंमें प्रजाका नाश हो आश्विनमें रत्न एकत्र हो कार्तिकमें मंत्रकी सिद्धि हो मार्गशीर्ष (अगहन) में लेवे तो तैसेही फल हो पौषमें शत्रुको पीड़ा हो माघमें बुद्धिकी वृद्धि हो फाल्गुनमें लेवे तो सर्व काम सिद्ध हो मलमासमें दीक्षा न लेवे । शिष्यको दक्षिण (दहिने) कानमें पूर्ण हृदय याने प्रसन्न मन होकर तीनवार मंत्र देवे मन्त्रके अर्थभी कहे मन्त्रके बीज कहे मन्त्रकी शक्ति (प्रभाव) फल अर्थात् सब भेदोंको बतादेवे जिससे कि शिष्यका कल्याण हो ऐसा न हो कि ' हरे शिष्य धन शोक न हरई ॥ सो गुरु घोर नरकमहँ परई ॥ ' इत्यादि कहा है ऐसा करनेसे तो ' लोभी गुरू लालची चेला । दोनों नरकमें ठेलम-ठेला । ' ऐसा गुरु कभी न करना चाहिये ॥ १६४–१६८ ॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! कोई कोई कहतेहैं कि, शिष्य करनेमें दोष है इसलिये शिष्य नहीं करना चाहिये सो क्यों कहते हैं (उत्तर) हे शिष्य ! अगर शिष्य करना दोषही होता तो बडे २ महात्मा व विद्वानलोग शिष्य क्यों करते और गुरु शिष्य होना शास्त्रमेंही क्यों लिखते इसलिये गुरु शिष्य होना मुख्य धर्म है हाँ इतनी बात अवश्य

लिखीहै कि गुरु शिष्य विचारसे करे बिना विचारे शिष्य नहीं करे (प्रश्न) हे स्वामीजी! विचारसे शिष्य कैसे करे सो कहिये? (उत्तर) हे शिष्य! विचार इसप्रकारसे करे प्रथम तो शिष्यके शील स्वभावादि देखकर करे जैसा कि, गौतमीयतंत्रमें कहाहै यथा ९ अध्याये॥ नारद उवाच–

वर्षैकेन भवेद्योग्यो विप्रः सर्वगुणान्वितः॥
वर्षद्वयेन राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः॥१६९॥
चतुर्भिर्वत्सरैश्शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता॥
यदा शिष्यो भवेद्योग्यः कृपालुः सद्गुरुस्तदा॥
कृपया परया सम्यक् दीक्षाया विधिमाचरेत् १७०

अर्थ–"नासंवत्सरवासिने प्रब्रूयात्।" इस श्रुतिके प्रमाणसे सम्पूर्ण गुणोंकरके युक्त ब्राह्मण एकवर्षमें दीक्षाके योग्य होतेहैं और क्षत्रिय दो वर्षमें वैश्य तीन वर्षमें शूद्र चार वर्षमें शिष्य करने योग्य होताहै ऐसा कहाहै भाव बिना इतने दिन परीक्षा किये शिष्य नहीं करना चाहियें जब शिष्य योग्य हो तब कृपालु सद्गुरु याने सात्विक वैष्णव गुरु कृपासे सम्पूर्ण दीक्षाविधिसे शिष्य करे॥ १६९॥ ॥ १७०॥ हे शिष्य! देखो छदामकी हण्डी लेतेहैं तो कितना ठोक बजाकर लेतेहैं और जिनको अमूल्य मंत्ररत्न देना होताहै फिर उनकी परीक्षा क्यों न करना चाहिये इहां दृष्टान्त है सो सुनो एक महात्मा किसी निर्जन स्थानपर भजन करतेथे उसीही स्थानपर दो जिज्ञासुभी रहा करतेथे वो दोनों महात्माजीके सेवाभी किया करतेथे एक दिन शिष्य होनेके वास्ते दोनोंने श्रीमहात्माजीसे प्रार्थना किया महात्माजीने शिष्य होनेके लिये बहुतही मना किया परंतु न माने तब महात्माजीने दोनोंकी परीक्षा करनेके वास्ते एकको तोता एकको मैना दिया और कहा कि, जहां कोई न देखे तहांपर जाकर मारलावो तब शिष्य करेंगे दोनों प्रसन्न होकर दोनों तरफ चले एक मूर्खने तो इधर उधर देखकर मैनाको

निर्जनमें मारडाला दूसरा बिचारा विवेकी था सर्वव्यापी ईश्वर जान कहींभी एकांत न देखकर लौट आया जब महात्माजीने पूँछा अपना २ वृत्तांत कहा महात्माजीने मैनाको जियाकर उड़ादिया अ मूर्ख अज्ञानीको आश्रमसे निकाल बहार किया और ज्ञानीको शि किया हे शिष्य! इसको परीक्षा कहतेहैं (प्रश्न) हे स्वामीजी किसीको वैष्णव शिष्य करे और वैष्णव धर्मोपदेश करे तो क्या फ है सो कृपाकरके कहिये (उत्तर) हे शिष्य! हमारे वैष्णव शास्त्र सिद्धांत है कि वैष्णव धर्म देनेवाला कृतार्थ रूप है यथा स्कांदपुर णोक्तवैष्णवखण्डे वेंकटेश्वरमाहात्म्ये १ अ०-

नरेभ्यो वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः ॥
स सागरमहीदाने तत्पुण्यं लभते हि सः ॥ १७१

अर्थ-जो ब्राह्मण वैष्णव साधु किसी मनुष्यको वैष्णवधर्म उपदे करतेहैं भाव वैष्णव बनातेहैं वह ५० कोटि योजन पृथ्वी दान करने बराबर पुण्यको प्राप्त होतेहैं इसलिये वैष्णवधर्म उपदेश अवश्य करन चाहिये ॥ १७१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! सब जातिको एकहि मन्त्र देवे कि भिन्न २ मन्त्र देवे सो कृपा करके कहिये (उत्तर हे शिष्य! अगस्त्यसंहितामें कहाहै यथा-

श्रुतिर्ब्रह्माह षड्वर्णं स्मृतिर्वर्णद्वयात्मकम् ॥
षड्वर्णं ब्राह्मणादीनां त्रयाणां द्विवर्णकम् ॥ १७२॥
तदन्येषां देशिकेन वक्तव्यं तारकं परम् ॥
शुचिव्रततमाः शूद्रा धार्मिका द्विजसेवकाः ॥१७३॥
स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ॥
लोकाश्चाण्डालपर्यन्तं सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः १७४॥

अर्थ-षडक्षर मन्त्र वेदोक्त है द्वयात्मकवर्ण याने रामनाम शास्त्रोक्त पुराणोक्त है तिसमें षडक्षर वेदोक्त ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको देना चाहिये

और अन्य सबको अर्थात् सुशील शूद्रको पतिव्रता स्त्रीको तथा सब जातिको रामनाम तारकब्रह्मका गुरु उपदेश करे हे शिष्य ! चाण्डालपर्यंतको रामनामका अधिकार है ॥ १७२-१७४ ॥ हे शिष्य! ॐकारके सहित वेदोक्त है और जहां ॐकार है तहां श्रीशब्दका प्रयोग करे इसको तंत्रोक्त पुराणोक्त कहतेहैं इस तरहसे शूद्र और स्त्रीको उपदेश करना चाहिये (प्रश्न) हे स्वामीजी ! यदि दिन तिथि नक्षत्रादिके योग नहीं लगे और अवश्य मन्त्र लेना हो तो क्या करे सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! भगवतके शरण होनेमें दिन तिथि काल जाति पाँतिका नियम व विचार नहीं है जबही सद्गुरु मिलजावें तबही दीक्षा लेवे यथा तत्त्वसारे-

दुर्लभं सद्गुरूणां तु सत्संगाद्यदुपस्थितम् ॥
तदनुज्ञा यदा लब्ध्वा स दीक्षावासरो महान् १७५॥
ग्रामे वा यदि वाऽऽरण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि ॥
आगच्छति गुरुर्दैवात्तदा दीक्षां प्रकारयेत् ॥१७६॥
अवश्यं वैष्णवीं दीक्षां प्रविशेत्सर्वयत्नतः ॥
दीक्षिताय विशेषेण संसिद्धिर्नात्र संशयः ॥१७७॥

अर्थ-सद्गुरुवोंका सत्संग दुर्लभ है जब सद्गुरु आकर उपस्थित हो तो उनकी आज्ञा पाकर जिसवक्त मन्त्र लेवे वही दीक्षाके महा उत्तम दिन है ॥ ग्राममें अथवा वनमें अथवा कोई पुण्यस्थानमें चाहै दिन हो चाहे रात्रि हो जबही दैवयोगसे गुरु स्वामीजी आवें तबही दीक्षा लेवे ॥ सर्वयत्नपूर्वक वैष्णवी दीक्षाकोही लेवे भाव और देवता देवीकी दीक्षामें दिन तिथिका विचार करे वैष्णवी दीक्षामें विचार करनेका कोईभी जरूरत नहीं है जबही मन्त्र लेवे तबही मन्त्र सिद्ध होजातीहै और लेनेवालेभी सिद्ध होजातेहैं ॥ १७५-१७७ ॥ (प्रश्न) हे

स्वामी जी ! मन्त्रोपदेशकालमें प्रथम कौन संस्कार करे सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! पाराशरस्मृतिमें लिखाहै यथा उत्तरखण्डे–

आद्यं तु शंखचक्रादिधारणं वैष्णवं स्मृतम् ॥
पुण्ड्रं नाम क्रिया चैव मंत्रं चैवार्चनं हरेः ॥ १७८॥

अर्थ–प्रथम संस्कार तप्त शंखचक्रसे अंकित करे ए संस्कार वैष्णवोंको मुख्य कहाहै दूसरा संस्कार ऊर्ध्वपुण्ड्र करे अर्थात् द्वादश तिलक करे, तीसरा संस्कार नामक्रिया याने (योजयेन्नाम दासांतं भगवन्नामपूर्वकम् । तस्मात्पापानि नश्यंति पुण्यभागी भवेन्नरः ॥) इत्यादि शास्त्रके प्रमाणसे रामदास कृष्णदास नारायणदास विष्णुदास वासुदेवदास तथा दासानुदास लक्ष्मीदास जानकीदास राधिकादास तुलसीदास यमुनादास सरयूदास अयोध्यादास इत्यादि नाम रखना चाहिये और देवीदास दुर्गादास शंकरदास गणेशदास इत्यादिनाम वैष्णवको नहीं रखना चाहिये चौथा संस्कार याग याने क्रिया संध्योपासनादि भगवतपूजनादि उपदेश करे पंचम संस्कार मन्त्रोपदेश करे हे शिष्य ! एही पांचो संस्कार वैष्णवको शास्त्रमें कहा है इन पांचो संस्कार विना वैष्णव नहीं होसकते हैं जो मूर्ख बकरा भैंसा खानेवालेसे अशुद्ध रामतारकमन्त्र लेकर वैष्णव बनते हैं वो मूर्ख भला कैसे वैष्णव होसकते हैं केवल मनमुखी वैष्णव बनकर गति चाहते हैं जब गुरुहीको गति होना कठिन है तो शिष्यकी गति कहांसे होगी ॥ १७८ ॥ इहां एक दृष्टांत है एक समय श्राद्धपक्षमें सब लोग अपने २ बाप दादा परदादाके नामसे श्राद्ध करनेलगे और बाप दादाके नामसे साधु ब्राह्मणोंको खूब खीर पूरी जिमानेलगे उसीही मोहल्लेमें एक वेश्या भी रहती थी वो यह हाल देखकर लोगोंसे पूछी कि, आप सब क्या करते हैं सबने कहा कि श्राद्ध करते हैं वेश्या बोली इसके करनेसे क्या होता है लोगोंने कहा पितरोंका उद्धार होता है सुनकर वेश्या प्रसन्न हुई और शोचनेलगी कि हम भी श्राद्ध करें, और साधु ब्राह्मणोंको जिमावें

जिससे कि हमारे भी पितरोंका उद्धार होजावे बस ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देनेलगी कोई न लिया भला वेश्याके न्योंता कौन लेवे क्या आजकालके ब्राह्मण थोडे ही थे जो सर्वभक्षी हुताशनके तरह सर्व स्वाहा करजावें जब वेश्याकी न्योंता कोई नहीं लिया सब ब्राह्मणोंने जवाब दिया तो वेश्या बडी चिन्तामें पडगई तबतक यह समाचार सुनकर वेश्याका गुरु भांड नकली ब्राह्मणका स्वरूप धरके लम्बी धोती पहनकर फूलेहरी पाग शिरपर धर चन्दन मुखमें पोतकर वेश्याकी साम्हनेसे आनिकला; वेश्या देखकर बहुतही प्रसन्न हुई हाथ जोड प्रणाम किया और न्योंताके वास्ते प्रार्थना किया भांड ब्राह्मणने मान लिया वेश्या नकली ब्राह्मणको घर लेगई चरण धोकर पलंगपर बैठा दिया आप बडी प्रीतिसे खीरपूरी बनानेलगी जब बनके तैयार होगया तब भोजन करनेको बैठे वेश्याने खूब खीर पूरी चीनी थारीमें परोसकर आगे धर दिया भांड ब्राह्मणने खूब भोजन किया, भोजन करके आचमन किया वेश्याने पानकी बीडी दिया और ५ रुपैया दक्षिणा देकर बोली कि महाराज ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि जिसमें हम और हमारे पितर अब तरजांय यह बात सुनकर भांड एक दोहा बोला यथा—

ज्योंके धन त्योंही गये, खाई खीर औ खण्ड ॥
तूं वेश्याकी वेश्या रही, हम रहे भंडके भण्ड ॥

हे शिष्य ! इसी प्रकारके बकरा भैंसाके काटनेवाला गुरु और रामतारकमन्त्र लेनेवाला शिष्य दोनोंको धन्य है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! बहुत पंडित लोग कहते हैं कि, शंख चक्र लेना दोष है और जहां तहांसे प्रमाणभी देते हैं यथा वायुपुराणे—

ब्राह्मणो यदि मोहेन तापयेद्वह्निमुद्रया ॥
न कर्माहों भवेदत्र स वै पाखण्डसंज्ञकः ॥ १७९॥

अर्थ–ब्राह्मण होकर यदि अज्ञानसे तप्त शंखचक्रांकित हो याने तप्त शंखचक्रसे शरीर दग्ध करे तो वह कर्म योग्य नहीं है उसको पाखण्डी जानना चाहिये ॥ १७९ ॥ इसी प्रकारसे बहुत प्रमाण देते हैं और आप प्रमाण देतेहैं कि शंखचक्र धारण करे सो क्या बात है (उत्तर) हे शिष्य ! तू तो एकही श्लोक प्रमाण दिया है इहां बहुत प्रमाण हैं सो सब शंकराचार्यकृत रामनाममहात्म्यनामक ग्रन्थमें प्रसिद्ध हैं तहांपर स्वयं शंकराचार्य्य जो कि शैवशाक्त मतके प्रचारक आचार्य हैं और स्वयं 'शंकरः शंकरः साक्षात्' इत्यादि प्रमाणसे श्रीशिवजीके अवतार हैं सोई अपने ग्रंथमें निर्णय किये हैं तहां प्रथम शंखचक्र धारण करनेकी विधानमें बहुत वेदके प्रमाण दिया है फिर पुराणोंके प्रमाणसे खण्डन किया है तिसके पीछे पुनः निर्णय किया है तहां ऐसा प्रमाण लिखा है यथा धर्मशास्त्रे जाबालिः–तथा व्यासः–

श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी ॥
विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानकम् ॥ १८० ॥
श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ॥
उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः १८१ ॥

अर्थ–जहां श्रुतिस्मृति याने वेद शास्त्रमें परस्पर विरोध हो तहांपर वेदहीके प्रमाण श्रेष्ठ है और जहां कहीं शास्त्रादिकमें विरोध वचन लिखा है तहां अनुमान करलेना कि कहीं किसी वेदकी शाखामें अवश्य प्रमाण होगा विना प्रमाण देखे खण्डन करना बडा दोष है और जहां कहीं वेदहीमें परस्पर विरोध हो तहां पर दोनों धर्म माननेयोग्य हैं ऐसा ऋषियोंका सिद्धांत है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ॥
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥ १८२ ॥

विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम् ॥
तुल्यप्रमाणकत्वेन न्याय एवं प्रकीर्तितः ॥१८३॥

अर्थ-वेद शास्त्र पुराणोंमें जहां परस्पर विरोध देखपड़े तहां वेदका प्रमाण मानना चाहिये और जहां धर्मशास्त्रमें और पुराणमें विरोध देखपडे तहां धर्मशास्त्रप्रमाण श्रेष्ठ है। और जहां परस्पर ऋषिवचनोंमें विरोध परे याने कोई ऋषि कुछ कहतेहैं कोई ऋषि कुछ कहतेहैं कोई ऋषि कुछ कहतेहैं तहां बहुत प्रमाण अर्थात् जिसमें बहुत ऋषियोंका प्रमाण मिले वही मत सिद्धान्त जानना चाहिये (यथा 'भूयसां स्याद्बलीयस्त्वम्' इति न्यायेन) भाव जिसमें बहुत प्रमाण हैं वही बली है यह न्यायका सिद्धांत है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ हे शिष्य ! इसी प्रकारसे शङ्कराचार्यजीने बहुत निर्णय करके अन्तमें एही कहाहै कि, वेदका प्रमाण पुराणोंसे खण्डन नहीं होसक्ता है इसलिये शंखचक्रका धारण वेदप्रमाण है तथा पुराणोंमें भी हजारों प्रमाण हैं इसलिये शंखचक्र वैष्णवोंके लिये अवश्य प्रमाण है बिना शंखचक्रके धारण किये वैष्णव नहीं होसक्तेहैं इसतरहसे शंकराचार्यजीने सिद्ध कियाहै मूर्ख लोग बिना इन सब ग्रन्थोंके देखेही निंदा करनेलगतेहैं सो महामूर्ख हैं (प्रश्न) हे स्वामीजी ! श्रीशंकराचार्यजीने कौन २ श्रुति प्रमाण दियाहै और कहां २ वेदमें प्रमाण है सो कृपाकरके कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! वेदमें बहुतही प्रमाण हैं कहांतक प्रमाण लिखें केवल एक मंत्र लिखतेहैं सो तुम जानो वह मंत्र शुक्लयजुर्वेद शतपथब्राह्मणमें याज्ञवल्क्य कात्यायनके संवाद है यथा--

देवासः पितरो येन विधृतेन बाहुना सुदर्शनेन प्रयताः स्वर्गं लोकमायन्। येनांकिता मनवो लोकसृष्टिं वितन्वंति ब्राह्मणास्तद्वहंति अग्निना

वै होत्रा तप्तं चक्रं द्विभुजे धार्यमित्यूर्ध्वपुण्ड्रमालिखेत् । तस्माद्विरेखं भवति पुनरागमनं न याति । ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतां जयति एवं वेद ॥ १८४ ॥

अर्थ-देवता पितर जिस शंख चक्रको धारण करके पवित्र होकर स्वर्गलोक याने दिव्यालोकको प्राप्त हुये और चौदहो मनु जिस शंखचक्रकरके अंकित भयेहुए लोक सृष्टिको विस्तार करनेको समर्थ हुयेहैं । तथा ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणभी उस शंखचक्रको धारण करतेहैं और बडे २ अग्निहोत्री विद्वानोंकोभी चाहिये अग्निमें तप्त करके शंखचक्रको धारण करना योग्य है तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलकभी करे । वह तिलक दो रेखावाला होताहै जिसके मध्यमे श्रीभी करना योग्य है शंखचक्रके लेनेसे और तिलकके करनेसे परब्रह्मके सायुज्य सालोक्य मुक्तिको प्राप्त करलेतेहैं ऐसा निश्चय जानो इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८४ ॥ हे शिष्य ! शंखचक्रके प्रमाण चारों वेदमें और १८ पुराणमें प्रसिद्ध हैं विशेष देखना हो तो (शब्दकल्पद्रुम) ग्रंथके ५८९ पृष्ठमें तकारादिशब्द प्रकरणमें देखो जहां सहस्रों प्रमाण दियाहै विशेष ग्रंथ विस्तारके भयसे नहीं लिखतेहैं दो मंत्र लिखतेहैं सुनो ।

यो ह वै सुश्लोकमौलेर्धर्माननुतिष्ठमानोऽग्निना चक्रं धत्ते ॥ अग्निर्वै सहस्रारः सहस्रारो नेमिर्नेमिना तप्ततनुः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति श्रुतिः॥ छंदोगपरिशिष्टे ॥ १८५ ॥

अर्थ-जो पुरुष निश्चयकर उत्तमश्लोक भगवान्के धर्म याने वैष्णव धर्ममें रहतेहैं वह तप्त शंखचक्रको धारण करतेहैं सहस्रार नेमि पवि पवित्र चरण इत्यादिनामवाले चक्र अग्निमें तप्त करके धारण करतेहैं वह निश्चयपूर्वक ब्रह्मसायुज्य सलोकताको प्राप्त होतेहैं ॥ १८५ ॥

स होवाच याज्ञवल्क्यस्तत् पुमानात्मा हिताय प्रेम्णा हरिं भजेत् सुश्लोकमौलेर्धर्माण्यंगेष्व-ग्निना धत्ते शतपथी ॥ १८६ ॥

अर्थ–याज्ञवल्क्यजी बोले कि, पुरुष आत्मा कल्याणके लिये भगवत्भजन करे और भगवत् आयुधको तप्तकर अंगमें धारण करे ॥ १८६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! द्वारकाजीमें जो शंखचक्र लेतेहैं सो कहीं प्रमाण है कि, ऐसेही लेतेहैं (उत्तर) हे शिष्य ! भविष्यपुराणके चौथे खण्डमें कहाहै यथा–

दाक्षिणात्ये राजगृहे वैश्यजात्यां समुद्भवः ॥
पीपानामसुतः सोमः सुदेवस्य तदा ह्यभूत् ॥ १८७ ॥
कृतं राज्यपदं तेन यथा भूपेन तत्पुरे ॥
रामानन्दशिष्योऽभूद्द्वारकां स समागतः ॥ १८८ ॥
हरेर्मुद्रां स्वर्णमयीं प्राप्य कृष्णात्स वै नृपः ॥
वैष्णवेभ्यो ददौ तत्र प्रेततत्त्वविनाशिनीम् ॥ १८९ ॥

अर्थ–दक्षिणदेशवाले सुदेव राजा वैश्यजातिवालेके कुलमें पीपानाम करके सोमवसुपुत्र होंगे वो पिताके तरह राज्य करके कुछ दिन बाद काशीपुरीमें श्रीरामानन्दस्वामीके शिष्य होकर श्रीद्वारकापुरीको जायंगे वहां श्रीकृष्णभगवान्से स्वर्णके मुद्रा याने (शंखचक्र) को प्राप्त करके वैष्णवोंको देंगे जिस शंखचक्रके लेनेसे जन्ममरणसे छूट जायंगे ॥ ॥ १८७–१८९ ॥ हे शिष्य ! विशेष देखना हो तो श्रीभक्तमाल देखो जिसमें श्रीपीपाजीके संपूर्ण वृत्तांत वर्णन हैं इससे द्वारकाजीमें शंखचक्र अवश्य लेना चाहिये (प्रश्न) हे स्वामीजी तिलक कितना करे सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! नारदपंचरात्रांतर्गत भरद्वाजसंहितामें ऐसा कहा है यथा २ अध्याये–

त्रयोदश द्वादश वाप्यूर्ध्वपुण्ड्राणि धारयेत् ॥
एकं चत्वारि षट् चाष्टावपि वांछंति केचन ॥ १९० ॥

अर्थ–कोई आचार्यके मतसे १३ पुण्ड्र कोईके मतसे १२ पुण्ड्र कोईके मतसे एक पुण्ड कोईके मतसे चार पुण्ड्र कोईके मतसे ६ पुण्ड्र कोईके मतसे ८ पुण्ड्र धारण कहा है इसी प्रकारसे अनेक भेद हैं कहीं२ लिखा है कि द्वादश ब्राह्मणोंको चाहिये चार क्षत्रियोंको दो पुण्ड्र वैश्यको और एक शूद्रको तथा स्त्रीकोभी एकही चाहिये यह प्रसंग पद्मपुराणोत्तरखण्ड तथा स्कन्दपुराणादिमें लिखा है ग्रंथविस्तार होनेके भयसे नहीं लिखते हैं ॥ १९० ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! राममंत्रवालेकोभी यही संस्कार है कि दूसरा (उत्तर) हे शिष्य ! यह जो संस्कार कहिआये हैं सो केवल नारायणमंत्रवाले अचारी वैष्णवोंके वास्ते कहा है और राममन्त्रवालेके लिये दूसरा संस्कार है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! रामभक्तोंके वास्ते कौन संस्कार कहा है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! रामभक्तोंके पंचसंस्कार महारामायण अगस्त्यसंहिता सदाशिवसंहिता महाशंभुसंहिता व वशिष्ठसंहिता वशिष्ठपंचरात्रादिमें विस्तारसे वर्णन है तहांसे कुछ कहते हैं सुनो अगस्त्यसंहितायाम्– अगस्त्य उवाच सुतीक्ष्णं प्रति ।

नांकितो चापबाणाभ्यां न मंत्रोस्ति षडक्षरः ॥
न नाम रामसंबंधि न रामोपासको भवेत् ॥ १९१ ॥
बाहुमूले धनुर्बाणेनांकितो रामकिंकरः ॥
शीतलेनाथ तप्तेन तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥ १९२ ॥
शीतलाच्छतगुणं प्रोक्तं तप्तं च परिधार्यते ॥
अंकिताः सर्वकालेषु चतुर्वर्णाश्रमादयः ॥ १९३ ॥
चक्राच्छतगुणं प्रोक्तं फलं बाणादिधारणे ॥
सर्वेषां रामभक्तानां राममुद्राभिधारणम् ॥ १९४ ॥

अर्थ—धनुर्बाणसे जो अंकित नहीं है जिनको रामतारक षडक्षर मंत्र नहीं है और रामसम्बन्धि याने रामदास सीतारामदास रघुवरदास रघुनन्दनदास रघुवीरदास इत्यादि जिनके नाम नहीं हैं वह रामोपासक नहीं हैं। जिनके बाहुमूल शीतल अथवा तप्त धनुर्बाण करके अंकित है उसकी मुक्ति अवश्यही होगी इसमें सन्देह नहीं है। शीतल धनुषबाणसे सौगुण अधिक फल है तप्त धनुषबाणके धारणमें इस लिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी सबको धारण करना चाहिये। काहेसे कि शीतल धनुषबाण थोरी देरके लिये है और तप्त सब दिनोंके लिये हैं इससे तप्त धनुर्बाणही धारण करना चाहिये। शंखचक्रसे सौगुणा अधिक फल धनुषबाणके धारणमें कहा है इससे सब रामभक्तोंको राममुद्रा धारण करना चाहिये ॥ १९१–१९४ ॥ पुनरपि—

वामे करे धनुः कुर्य्याद्दक्षिणे बाणमेव च ॥
सबिंदुतिलकं कुर्यान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ १९५ ॥
तिलकं रामरूपेण बिन्दुरूपेण भूमिजा ॥
धृतेन रामभक्तानामग्रण्यश्च गुणाग्रणीः ॥ १९६ ॥

अर्थ—वाम हाथमें धनुष धारण करे दक्षिण भुजामें बाण और पीतबिंदुके सहित तिलक करे वह मनुष्य मुक्तिभागी याने मोक्षको प्राप्त हो। तिलक रामरूप है बिंदु श्रीजानकीजीका रूप है जो रामभक्त धारण करे वह रामभक्तोंमें अग्रगण्य नाम प्रथम गिनेजाते हैं और सर्वगुणोंकरके युक्तभी होजाते हैं ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ हे शिष्य! ऐसे ही सदाशिव संहितामें अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णजीको कहा है—

मुनेऽस्मिन् भारते वर्षे चापबाणांकिता नराः ॥
स्वपरं कुलसाहस्रं तारयंति सुखेन सः ॥
येषां कुले हि एकोपि रामायुधयुतः सुधीः ॥१९७॥

तेऽपि यांति परं लोकं कुत्र योगमखादिभिः ॥
धनुषांकितबाहुभ्यामर्च्चनं देवपितॄणाम् ॥ १९८ ॥
तस्य ते पितृदेवाश्च गच्छंति परमं पदम् ॥
धनुःशरांकितो मर्त्यो यद्यत्कुर्य्याच्छुभं मुने ॥
तत्तच्छतगुणं याति विपरीतेन निष्फलम् ॥१९९॥

अर्थ-हे मुने! इस भारतखण्डमें धनुष बाण करके अंकित मनुष्य लोग अपनी श्रेष्ठ सहस्र कुलको सुखपूर्वक तारतेहैं ॥ जिनके कुलमें एकभी धनुषबाणांकित चतुर है वहभी कुलके सहित परलोक (साकेत) लोकको चलेजातेहैं तो योग यज्ञादिसाधनसे क्या होताहै॥ जो मनुष्य धनुषबाणसे दोनों भुजा अंकित होकर पितृदेवको पूजतेहैं याने श्राद्ध करतेहैं उनके वह सब पितरलोग परम पदको जातेहैं ॥ हे मुने! धनुर्बाणांकित होकर जो जो शुभ कर्म मनुष्यलोग करतेहैं वह सब कर्म सौगुण होजाताहै और धनुषबाणसे रहित होकर कर्म करनेसे सब वृथा होजाताहै इससे अवश्य धारण करना चाहिये ॥ १९७-१९९ ॥ पुनरपि सदाशिवसंहितायाम् अगस्त्य उवाच-

शीतांकितो धनुर्वाणात्प्रथमं च महाशिवः ॥
शीतया ह्यंकितः पश्चाद्धनुमांश्च हरिप्रियः ॥२००॥
महाशंभुः शिवं प्राह स शिवो नारदं तथा ॥
नारदश्चाह वाल्मीकिं वाल्मीकिश्च लवं कुशम्२०१
हनुमांस्तु अगस्त्याय अगस्त्यश्च सुतीक्ष्णकम् ॥
सुतीक्ष्णेन महाभागा येंऽकिता बहवो मुने ॥२०२॥

अर्थ-शीतल धनुर्बाणसे प्रथम महाशिवजी अंकित हुये और शीतलही धनुषबाणसे पीछे श्रीहनुमानजी अंकि हुयेहैं जो कि भगवत्प्रिय हैं ॥ महाशंभुने शिवजीसे कहा शिवजीने नारदजीको दिया नारदजीने श्रीवा-

ल्मीकिजीको दिया वाल्मीकिजीने लवकुशको दिया श्रीहनुमानजीने अगस्त्यजीको दिया अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णजीको दिया सुतीक्ष्णजीने दण्डकवनवासी बहुतही मुनियोंको धनुषबाणसे अंकित किया ॥ ॥ २००–२०२ ॥ हे शिष्य! यह रामपंचसंस्कारके गुरुपरंपरा याने संप्रदायवर्णन किया ऐसेही शेषजीने वेदोंसे कहाहै यथा–सदाशिवसंहितायां शेष उवाच, वेदान्प्रति–

सुरगुर्वादिगुरवो राममंत्रस्य सेवकाः ॥
श्रीगुरोर्म्मारुतिः शिष्यः सुग्रीवः कपिनां पतिः२०३
श्रीरामधनुषतौ च राममंत्रस्य धारणात् ॥
पद्माष्टदशसंख्याताः स्वसैन्याश्च हनूमता ॥२०४॥
दीक्षितास्तेन मंत्रेण धनुर्बाणेन चांकिताः ॥
श्रीहनुमच्छिष्योभून्महाराजो विभीषणः ॥२०५॥
रामायुधाभ्यां तताभ्यामंकिताश्च स मुद्रया ॥
तथा तस्य प्रजाः सर्वाः चिह्निता रामलांछनैः२०६
राजमार्गमिमं विद्धि रामोक्तं जानकीकृतम् ॥
यद्दते चान्यमार्गोस्तु चौराणां वीथिका यथा२०७
आद्याचार्यहनूमंतं त्यक्त्वा ह्यन्यमुपासते ॥
क्लिश्यत्येव च मुग्धस्तु मूलहा पल्लवाश्रितः॥२०८॥

अर्थ–देवगुरु बृहस्पति आदि लेकर सब आचार्य श्रीराममंत्रके सेवक हैं श्रीलक्ष्मी आचार्यसे प्रथम मंत्रादिसंस्कार श्रीहनुमानजीने लिया और सब वानरोंका राजा सुग्रीवजी हनुमानजीके शिष्य हुये तथा अपनी १८ पद्मयूथप संख्यावाले सब सेनाको हनुमानजीसे राममन्त्र करके दीक्षित किये और धनुषबाणकरके अंकित किये पुनः हनुमानजीके

शिष्य विभीषणजी महाराज हुये और मुद्राके सहित धनुर्बाण करके अंकित हुये तैसेही विभीषणजीके सब प्रजालोगभी धनुषबाणसे अंकित हुये ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे शिष्य ! सुतीक्ष्ण श्रीरामजीके कहा और श्रीजानकीजीके किया वह राजमार्ग है याने पक्कीसडक है इसको तुम जानो इससे जो रहित मार्ग है सो चोरोंकी वीथिका (गली) के समान है भाव रामभक्तिसे जो रहित पंथ चलाहै सो सब 'कुपथं तं विजानीयाद्गोविन्दरहितागमम्' इस प्रमाणसे सब पाखण्डी परलोकमें दण्डभागी होवेंगे ॥ आदिआचार्य श्रीहनुमानजीको छोड़कर जो अन्य आचार्योंकी सेवाकरताहै सो मूर्ख दुःख पाताहै वह मूर्ख मूल (जड़) काटकर पल्लवकी आश्रय लियाहै ॥२०३-२०८॥ हे शिष्य ! इसी प्रकारसे महाशंभुसंहितामें अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णजीसे कहाहै-

ज्ञानवैराग्यसंतोषाः क्षमाशीलादयोऽपि वै ॥
रामायुधाभ्यां तप्ताभ्यां शीतया मुद्रया सह २०९॥
यो धृत्वा भुवनं सर्वः पुनात्येव सुनिश्चितम् ॥
तुलसीकाष्ठसंयुक्तास्ते नरा रामभावुकाः ॥ २१० ॥
यज्ञोपवीतं धौतं च कौपीनाच्छादनं परम् ॥
गृह्णंति धातुपात्रं वा तुंबिकां रामसेवकाः ॥ २११ ॥
शृंगारं मैथिलीकृत्यं श्रियं विन्दुं च चन्द्रिकाम् ॥
करोति रसिको नित्यं तिलकं तत्तु मन्यते ॥२१२॥
शीलसंतोषसत्यादिनिःकामार्यवलक्षणम् ॥
भक्ष्यं महाप्रसादस्य पानं पादोदकं सदा ॥ २१३ ॥
दण्डवत्प्रोक्तमुभयं वंदनं स्वामिदक्षिणे ॥
गुरुं हरिं समं मन्येत्सेव्यं चैव परिक्रमम् ॥२१४॥

तुलस्या मालतिलकं धनुर्बाणांकितौ भुजौ ॥
रामसंत्राभिनामाद्यः संस्कारो रामसेवके ॥ २१५ ॥

अर्थ–ज्ञान वैराग्य सन्तोष क्षमा शीलादिकोंको और तप्त धनुष-बाण अथवा शीतल धनुर्बाणको जो धारण करतेहैं वह तीनों लोकको शीघ्र निश्चयपूर्वक पवित्र करतेहैं ॥ तुलसीकाष्ठकी माला करके जो मनुष्य युक्त है वह श्रीरामजीके अति प्यारे भाविक भक्त है ॥ यज्ञोपवीत और धौत (धोती) अचला कौपीन (लंगोटी) के ऊपर धारण करतेहैं और धातुपात्रको अथवा तुंबिकापात्र (कमण्डलु) को रखना यह रामभक्तोंके लक्षण हैं ॥ श्रीजानकीजीका किया शृंगार श्रीबिन्दुचन्द्रिकाको रसिकलोग तिलक करतेहैं और उसीको मुख्य तिलक मानतेहैं । हे शिष्य ! इहांपर यह भाव है कि, प्रथम तो मृत्तिकाका ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करे उसके मध्यमें श्री करे श्रीके ऊपर दक्षिणभावकी चन्द्रिका करे और श्रीके अधोभाग (नीचे) पीताबिन्दु (वेनी) करे यह रसिकोंका तिलक रहस्य ग्रन्थमें कहाहै ॥ शील संतोष सत्य निःकाम शांति क्षमा कोमलादि लक्षणको धारण करे और प्रसादका भोजन तथा नित्य प्रति चरणोदक लेना स्वामीको दक्षिण (दहिने) ओरसे दो साष्टांग प्रणाम करना कहाहै भगवान्को गुरुको बराबर माने और ' प्रदक्षिणाश्चतस्रश्च तत्तीर्थग्रहणे त्रिधा ' इत्यादि शाण्डिल्यऋषिके मतसे चार प्रदक्षिणा करे और तीन वार चरणोदक लेवे भाव गुरुको ईश्वरको सब प्रकारसे बराबर जानकर सेवा करे गुरुस्वामीको मनुष्य न जाने ॥ तुलसीकी माला १ तिलक २ दोनों भुजामें धनुष बाण धारण करना ३ रामतारक मन्त्र लेना ४ रामसंबंधि नाम होना ५ यह पांच संस्कार रामभक्तोंको होना चाहिये ॥ २०९–२१५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! धनुषबाण धारण करनेके वेदमें प्रमाण है कि नहीं यदि हो तो कृपाकरके कहिये (उत्तर) हे शिष्य! जो वेदमें

प्रमाण नहीं होगा तो ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें कहांसे आवेगा इसलिये ऋषियों मुनियों के ग्रन्थ सब वेदानकूलही हैं इसमें संदेह करना मूर्खता है अब श्रुतिप्रमाण सुनो यथा-

यो वै नित्यं धनुर्बाणांकितो भवति स पाप्मानं तरति स संसारं तरति स भगवताऽश्रितो भवति स भगवद्रूपो भवत्यर्थर्वणे श्रुतिः ॥ २१६ ॥

अर्थ-जो निश्चयपूर्वक नित्यप्रति शीतल धनुर्बाणसे अंकित होतेहैं वह पापीभी तरतेहैं वह संसारको भी तरतेहैं वह भगवतके आश्रित होतेहैं वह भगवद्रूप (कीटभृंगन्याय) करके होजाते हैं ॥ २१६ ॥ यह श्रुति अथर्वणवेदका है. हे शिष्य! और प्रमाण सामवेदोक्त धनुर्बाण शाखामें विस्तारसे लिखाहै । (प्रश्न) हे स्वामीजी ! वादी लोग कहतेहैं कि ब्राह्मणादिके दास नाम नहीं चाहिये यथा-

दासनाम तु शूद्राणां न द्विजानां कदाचन ॥

अर्थ-अर्थात् दासनाम तो शूद्रोंको होना चाहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके नहीं फिर वैष्णवोंमें दासनाम क्यों धरेजाते हैं (उत्तर) हे शिष्य! दासनाम शूद्र और सेवक दोनोंके हैं तथा 'दासः सेवकशूद्रयोः ।' अर्थात् दासनाम सेवक शूद्र दोनोंके हैं. हे शिष्य ! तीनों वर्णकी सेवा करनेसे शूद्रको दास कहाहै और इहां भगवतके सेवा करनेसे सबको दास कहतेहैं इसीलिये हमारे वैष्णवसंप्रदायमें 'योजयेन्नाम दासांतं भगवन्नामपूर्वकम्' अर्थात् प्रथम भगवतनामके पीछे दासशब्द लगावे जैसा कि रामदास कृष्णदास इसप्रकारसे नाम धरे और दासनाम तो वेदमेंभी है यथा-'ब्रह्मदासा ब्रह्मदासा ब्रह्मा मेति कितवाः' अर्थात् ब्रह्मके दास ब्रह्मादिक हैं दूसरे की बातही क्या है दास विना गति नहीं है इसमें सहस्रों प्रमाण हैं पुनरपि-

दासोहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥
हनूमाञ्छत्रुसैन्यानां निहंता मारुतात्मजः ॥२१७॥

अर्थ–वाल्मीकीय रामायणमें हनुमानजीका वचन है कि कोसलेन्द्र श्रीरामजीके मैं दास हुं हे शिष्य! यदि दास शूद्रकोही कहे तो हनुमानजीकोभी शूद्रकहना होगा इसलिये दासधर्मसे श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥२१७॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! कोई २ विद्वान कहतेहैं कि शिरपै धनुषबाण धारण करना चाहिये और आप भुजामें धनुर्बाण धारण करनेको कहतेहैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य! नारायणमंत्रवालेको शिरपर धनुषबाण धारण करना चाहिये यथा–नारदपञ्चरात्रे–

ललाटे च गदा कार्या मूर्ध्नि चापं शरं तथा ॥
नन्दकं चैव हृन्मध्ये शंखं चक्रं भुजद्वये ॥ २१८॥
शंखचक्रान्वितो विप्रः श्मशाने म्रियते यदि ॥
प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य गौतम२१९॥

अर्थ–श्रीशिवजीके वचन हैं गौतम ऋषिसे कि ललाटमें गदा धारण करे शिरपर धनुष बाण और नन्दक (खड्ग) हृदयके बीचमें शंख चक्र दोनों भुजामें अर्थात् दक्षिणभुजामें चक्र धारण करे बाँयें भुजामें शंख। हे गौतमजी! शंखचक्रांकित ब्राह्मण यदि श्मशानमें भी मरे तो जो गति तीर्थराज प्रयागमें मरनेसे होतीहै वही गति उसको मिलतीहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ हे शिष्य! इसीप्रकारसे सर्वत्र कहाहै जहाँ बाहुमूलमें कहाहै तहाँ रामायुध धनुर्बाण जानना चाहिये और जहाँ शिरपर धारण करनेको लिखा हो तहाँ विष्णुपंचायुधके विधान जानना चाहिये सो नारायणमंत्रवालेके लिये प्रमाण है (प्रश्न) हे स्वामीजी! नारायण, राम क्या दो हैं?

(उत्तर) हे शिष्य ! इस विषयको जानना हो तो (उपासनात्रय-सिद्धान्त) ग्रंथको देखो अथवा (वेदार्थप्रकाशरामायण) देखो उसमें सम्पूर्ण भेदाभेद वर्णन है ।

:इति श्रीमदयोध्यावासिना वैष्णवसाधुश्रीसरयूदासेन विरचिते श्रीवैष्णवकुल-: भूषणसारसंग्रहे गुरुशिष्यसंवादे भाषाटीकायां गुरुशिष्यलक्षण-दीक्षामाहात्म्यपञ्चसंस्कारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब आप तुलसीमाला धारण करनेकी विधि और निर्माण करनेकी विधि विस्तारपूर्वक कहिये और यहभी कृपाकरके कहिये कि माला कितनी प्रकारकी होती है तथा किसदे-वताके लिये कौन माला धारण करना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! माला धारण करनेकी विधि गौतमीयतंत्रके १९ अध्यायमें ऐसा कहाहै यथा—

रुद्राक्षैरपि पद्माक्षैः पुत्रजीवकुचंदनैः ॥
स्फटिकैश्च प्रवालैश्च कुशग्रंथिभवैस्तथा ॥ १ ॥
तथा कमलसंभूतैस्तुलसीकाष्ठनिर्मितैः ॥
एभिश्च मालिकां कुर्य्यान्मतिमान्वैष्णवे मनौ ॥२ ॥

अर्थ-रुद्राक्षकी पद्माक्षकी पुत्रजीव (पितुंगिया) की कुशग्रंथिकी कुचंदन (जायफल) की स्फटिकमणिकी और प्रवाल (मूँगा) की कमलकी तुलसीकाष्ठसे बनीहुई इतने वस्तुवोंकी माला वैष्णवीमंत्रके जपनेमें बुद्धिमान करे ॥ १ ॥ २ ॥ पुनरपि—

रुद्राक्षसंभवा या तु अनंतफलदा मता ॥
पुण्डरीकभवा माला गोपालमनुसिद्धिदा ॥ ३ ॥
पुत्रजीवभवा या तु पुत्रं वितनुतेऽचिरत् ॥
कुचन्दनभवा माला राज्यभोगापवर्गदा ॥ ४ ॥

प्रवालनिर्मिता या तु सर्वलोकवशंकरी ॥
कुशग्रंथिभवा माला धर्मवृद्धिकरी मता ॥ ५ ॥
आमलकीभवा माला सर्वसिद्धिप्रदा मता ॥
तुलसीसंभवा या तु मोक्षं वितनुतेऽचिरात् ॥ ६ ॥

अर्थ-रुद्राक्षकी बनी माला अनंत फलको देनेवाली है और कमलाक्षकी बनी माला गोपालमंत्रकी सिद्धि देनेवाली है । पुत्रजीवकी माला जो है सो पुत्रलाभको बहुकालपर्यंत विस्तार करतीहै और कुचंदन (जायफल) की बनी माला राज्यभोग और मोक्षको देतीहै । प्रवाल (मूँगा) की बनी माला सब जीवोंकी वशकरनेवाली है कुशग्रंथिकी बनी माला धर्मको वृद्धि करतीहै । आमलकी (अँवला) की बनी माला सर्वसिद्धिको देतीहै और सर्वोपर तुलसीकाष्ठकी बनी माला जो है सो मोक्षको विस्तार करतीहै ॥ ३–६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब कृपाकरके यह कहिये कि, कौन देवताओंके उपासनावालेको कौन माला चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! शाण्डिल्यसंहितामें ऐसा कहाहै यथा–

शैवा रुद्राक्षघटितां पद्माक्षैर्विधिपूजकाः ॥
शाक्तास्तु विद्रुमाकीर्णां गाणेशा गजदंतकैः ॥ ७॥
भास्कराः स्फटिकाक्षैस्तु तापसा कुशग्रंथिभिः ॥
कौबेरा मुनयः स्वर्णैर्माभक्ताश्च यथायथा ॥ ८ ॥
केवलं तुलसीमालां वैष्णवा भिक्षुका अपि ॥
विरक्तवृत्तिनश्चान्ये धारयेयुरितीरितम् ॥ ९ ॥
धारणे च जपे दाने तुलस्याश्चातुलं फलम् ॥
प्रभावमस्या देवास्तु नालं वक्तुं चतुर्मुखः ॥ १० ॥

अर्थ-शिवभक्त शैवोंको पूजनादिकर्मोंमें रुद्राक्षकी माला चाहिये और ब्रह्माके पूजनेवालोंको कमलाक्षकी माला चाहिये शक्ति देवी दुर्गा आदिके पूजक शाक्तोंको विद्रुम (मूँगा) की माला चाहिये गाणपत्य गणेशभक्तोंको गज (हाथी) दांतोंकी माला चाहिये, सूर्यभक्तोंको स्फटिकमणिकी माला चाहिये और तपस्वियोंको याने वानप्रस्थोंको कुशग्रन्थिकी माला चाहिये कुबेरभक्तोंको स्वर्ण (सोने) की माला चाहिये और लक्ष्मीभक्तोंको भी वही माला चाहिये । केवल तुलसीकी माला वैष्णवोंको तथा भिक्षुकसंन्यासियोंको चाहिये और भी विरक्तवृत्तिवाले जो वैष्णव साधुलोग हैं उन सबको तुलसीहीकी माला धारण करनेको कहा है । धारणमें जपमें और दानमें तुलसीकी माला अतुल फलको देनेवाली है इसके संपूर्ण माहात्म्यको ब्रह्मादिक देवताभी नहीं कहसकते हैं ॥ ७-१० ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! संन्यासीको तो माला शिखा सूत्रादिक धारण नहीं लिखा है आप कहते हैं सो क्या बात है? (उत्तर) हे शिष्य ! विकर्मसंन्यासी जो हैं चोटकटा उनको नहीं कहा है वह तो पतित संन्यासी हैं ए लोग मुख्य संन्यासी नहीं हैं मुख्य संन्यासी तो रामानुजीय वैष्णव त्रिदण्डी होते हैं और इन्हीं संन्यासियोंके प्रमाण वाल्मीकीय आदि आर्ष ग्रन्थोंमें लिखा है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! तुलसीकी माला कितने प्रकारके होना चाहिये ? (उत्तर) हे शिष्य ! गौतमीयतन्त्रके १९ अध्यायमें ऐसा कहा है यथा-

अष्टोत्तरशतमणिनिर्मिता या तु मालिका ॥
राज्यं वितनुते नॄणां देहांते मोक्षदायिनी ॥ ११ ॥
मोक्षार्थी पंचविंशत्या पुत्रार्थी त्रिंशता जपेत् ॥
चत्वारिंशन्मणिभवा अभिचाराय केवलम् ॥ १२॥
पंचाशन्मणिभिर्माला सर्वकर्मप्रसाधिका ॥
अकारादिक्षकारांता अक्षमालेति कीर्तिता ॥ १३ ॥

अर्थ-१०८ मणिकी जो माला है सो मनुष्योंको राज्यभोग सुखको विस्तार करती है और अन्तमें मोक्ष देती है ॥ मोक्षकी चाहनेवाले २५ मणिकी माला जपे और पुत्रके इच्छावाले ३० मणिकी माला जपे, ४० मणिकी माला केवल अभिचारके लिये याने वशीकरण उच्चाटन मोहन मारण इन कर्मोंके लिये है कुछ कल्याणके वास्ते नहीं है । और५०मणिकी माला जो है सो संपूर्ण कर्मोंके साधन करनेवाली है अकार अक्षरसे क्षकारपर्यंत जितना अक्षर गिनतीमें हो उतनेही मणिकी माला अर्थात् ५० मणिकी माला हो उसको अक्षमाला कहते हैं । इससे यह देखाया कि कमलाक्षकी माला और रुद्राक्षकी माला ५० मणिकी होना चाहिये कम ज्यादे न हो ॥ ११-१३ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! करमालाका क्या प्रमाण है सो कहिये?(उत्तर) हे शिष्य ! गौतमीयतंत्रमें ऐसा कहा है यथा-

नित्यं जपं करे कुर्य्यान्न तु काम्यमबोधनात्
आरभ्याऽनामिकामध्यात्पारिवर्तेन वै क्रमात्॥१४॥
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥
गोपालतंत्रमंत्राणां करमालेयमीरिता ॥ १५ ॥

अर्थ-नित्यनेमकी जाप कर (हाथ) में करना परंतु कोई कामना करके अज्ञानसे नहीं जपना तहां करमालाकी विधि कहते हैं कि, अनामिका अंगुलके मध्यपर्वसे प्रारम्भ करे और दक्षिणसे घुमाकर तर्जनी अंगुलके मूलपर्यंत जावे पुनः तर्जनीसे लौटकर उसी अनामिका अंगुलके मध्यपर्व पर आवे इसी प्रकारसे दशौ पर्वसे जपे इसको करमाला कहा है। इस करमालासे गोपालमंत्रतंत्रनको जपना चाहिये ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! माला किस प्रकारके बनावे और किस डोरीसे पोहै सो कहिये ? (उत्तर) हे शिष्य ! सर्पाकार अथवा गोपुच्छाकार दो प्रकारकी माला बनावे और तीन प्रकारके डोरीसे पोहै यथा गौतमीयतंत्रे १५ अध्याये-

कार्पाससंभवं सूत्रं पुण्यस्त्रीभिर्विनिर्मितम् ॥
अथवा पट्टसूत्रेण स्वर्णसूत्रेण वा तथा ॥ १६ ॥
अणिमादयो मोक्षांताः सिद्धयः स्वर्णसूत्रके ॥
पट्टसूत्रे वश्यकरं धनपुत्रविवर्द्धनम् ॥ १७ ॥
कार्पाससंभवं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ग्रंथयेच्छिल्पशास्त्रतः ॥ १८ ॥

अर्थ-कापास (रुई) के सूत्र पुण्यस्त्री याने जिनकी विवाह ८ । ९ । १० वर्षके अवस्थामें विधिपूर्वक हुई है उस स्त्रीके हाथसे बना-हुआ सूत्रमें पोहै अथवा पट्ट (रेशम) के सूत्रमें पोहै नहीं तो स्वर्ण (सोने) के सूत्रमें पोहै तिसमें स्वर्णके सूत्रमें पोह-नेसे अणिमादिक अष्ट सिद्धिकी प्राप्ति होती है और अन्तमें मोक्ष भी होती है रेशमके सूत्रमें वशीकरण होता है और धन पुत्रादिकोंकी वृद्धि होती है । कापासके सूत्रमें पोहनेसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष मिलते हैं प्रथम सूत्रको यज्ञोपवीतके समान त्रिगुण कर बांयें बांटकर पुनः तीन गुण दक्षिण बांटे तब ज्योतिषशास्त्रसे अच्छे शुभ दिन तिथियोंमें ग्रंथि देवे ॥ १६-१८ ॥ पुनरपि-

मुखे मुखं तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोजयेत् ॥
गोपुच्छसदृशी माला यद्वा सर्पाकृतिः शुभा ॥ १९ ॥
नान्यं मंत्रं जपेन्मंत्री कंपयेन्न विधूनयेत् ॥
कंपनात्सिद्धिहानिः स्याद्धूननं बहुदुःखदम् ॥ २० ॥
शब्दे जाते भवेद्रोगः करभ्रष्टे विनाशकृत् ॥
छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युस्तस्माद्यत्नपरो भवेत् ॥ २१ ॥
जपांते कर्णदेशे वा उच्चस्थाने च विन्यसेत् ॥

त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता ॥
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोस्तु ते ॥ २२ ॥

अर्थ–मुखमें मुखको मिलावे पुच्छमें पुच्छको दृढकर जोड़े याने खूब दृढ करके माला पोहे और ग्रंथिभी दृढ लगावे जिसमें माला शीघ्र टूटे नहीं और ऊपरमें सुमेरु लगावे तब गोपुच्छकी तरह माला यद्वा सर्पाकार माला शुभदायक होतीहै भाव दो प्रकारके माला बनावे या तो गोपुच्छके समान अथवा सर्पके समान बनावे अन्यथा नहीं बनावे । दूसरा मंत्रको मंत्री नहीं जपे भाव जो मंत्र दीक्षा लिया हो उसीही मंत्रको जपना चाहिये और न जपने कालमें मालाको डोलावे न मालाको धूने कंपानेसे सिद्धिकी हानि होतीहै धूननेसे बहुत दुःख होताहै । जपकालमें मालासे शब्द हो तो रोग हो हाथसे गिरपरे तो नाश हो माला टूटे तो मरण हो इससे यत्नपूर्वक जाप करे । जापके अंतमें करसंपुट करके मालाको दक्षिणकानमें अथवा उच्चस्थानपर याने शिरपर धरे और प्रार्थनापूर्वक बोले कि, हे माले ! आप देवताओंको सिद्धिदेनेवाली हो उस सत्यकरके मेरेकोभी सिद्धि देवो. हे माता ! आपको नमस्कार है यह मंत्र है ॥ १९–२२ ॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! किस २ अंगुलसे मंत्र जपे सो कहिये

(उत्तर) हे शिष्य ! शास्त्रमें सर्वांगुलसे जपनेकी आज्ञा है यथा गौतमीयतंत्रे १९ अध्याये–

अंगुष्ठतर्जनीभ्यां च जपाच्छुभशतं भवेत् ॥
तर्जन्यंगुष्ठयोगेन शत्रूच्चाटनकारकः ॥ २३ ॥
अंगुष्ठमध्यमायोगान्मंत्रसिद्धिः सुनिश्चितम् ॥
अंगुष्ठाऽनामिकायोगादुच्चाटोत्सादने मते ॥ २४ ॥
ज्येष्ठाकनिष्ठयोगेन शत्रूणां नाशनं मतम् ॥
न द्रुतं न विलंबं च जपेन्मौक्तिकपंक्तिवत् ॥२५॥

अर्थ-अंगुष्ठ तर्जनी अंगुलसे जपनेसे सैकडों शुभ होताहै और तर्जनी अंगुष्ठके संयोगकरके जपनेसे शत्रुओंको उच्चाटन करताहै। अंगुष्ठमध्यमाके योगसे जपे तो निश्चय मन्त्रकी सिद्ध होतीहै अंगुष्ठ अनामिकाके योगसे जपनेसे उच्चाटनकार्य सिद्धि होताहै और ज्येष्ठा कनिष्ठाके योगसे जपे तो शत्रुओंका नाश होताहै मन्त्र जपनेमें शीघ्रता न करे न धीरेहीसे जपे कैसे तो मुक्तापंक्तिवत् अर्थात् स्पष्ट जपे ॥ २३-२५ ॥(प्रश्न) हे स्वामीजी ! जाप कितने प्रकारके हैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! जापके लक्षण शास्त्रमें तीन प्रकारके वर्णन किये हैं यथा गौतमीयतंत्रे १५ अध्याये-

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकैः ॥
धिया यदक्षरश्रेणिं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ॥ २६ ॥
उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः ॥
जिह्वोष्ठौ चालयेत्किंचिद्देवतागतमानसः ॥ २७ ॥
किंचिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥
मंत्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः ॥२८॥

अर्थ-अक्षरकी आवृत्तिपूर्वक मानस १ उपांशु २ वाचिक ३ यह तीन प्रकारके जाप कहाहै तिसमें अक्षरस्वरके जाननेवाली बुद्धि याने विचारपूर्वक मन्त्रार्थके अनुसंधानसहित जो उच्चारण करे भाव मंत्रके अक्षर और अर्थ दोनोंको जो विचार सहित जपे उसको मानसजाप कहाहै । और देवताके स्वरूपको हृदयमें धारण करके जो जिह्वा और होठ दोनों किंचित् चलावे और थोरा २ श्रवणयोग्य हो वह उपांशु जाप कहाहै । वचनसे मन्त्रको खूब उच्चारण करे वह वाचिक जाप कहाहै ॥ २६-२८ ॥ पुनरपि तत्रैव-

मानसः सिद्धिकामानामुपांशुः पुष्टिमिच्छताम् ॥
वाचिको मारणे शक्तः कथितं जपलक्षणम् ॥२९॥
जपस्यादौ तथा चांते त्रितयं त्रितयं चरेत् ॥
न न्यूनं नाधिकं चापि जपं कुर्य्याद्दिनेदिने ॥३०॥
यदि कुर्यात्प्रमादात्तु तदाऽनिष्टमवाप्नुयात् ॥
न्यूने न्यूनांगदोषः स्यादधिके चाधिकांगकम्॥३१॥
कृते लक्षं जपेन्मंत्रं त्रेतायां द्विगुणं तथा ॥
त्रिलक्षं द्वापरे जाप्यं चतुर्लक्षं कलौ जपेत् ॥३२॥

अर्थ–मानस जाप कामनाओंको सिद्धिकरनेवालाहै उपांशु जाप पुष्टि चाहनेवालोंके लियेहै और वाचिक जाप मारण प्रयोगमें समर्थ है ऐसा तीन प्रकार जपके लक्षण कहाहै॥२९॥जपके आदिमें तथा अंतमें तीन २ व्याहृतिकी याने भूर्भुवःस्वःकी उच्चारण करे और नित्य नेमसे कम नहीं जपे न अधिक जपे जो नित्य नेम प्रारंभ करना वही नेम सर्वदा जपतेजाना॥३०॥यदि प्रमाद (अभिमान) से कम विशेष करे तो दोषहै अनिष्ट प्राप्त हो, क्या अनिष्ट हो सो कहतेहैं कि कम जाप करनेसे कम अंग होताहै और अधिक जाप करनेसे अधिकांग होताहै ॥३१॥ हे शिष्य! सत्य युगमें एक लक्ष जाप रहा त्रेतामें दो लक्ष द्वापरमें तीन लक्ष रहा कलियुगमें चतुर्लक्ष जपे तब मन्त्र सिद्ध हो अन्यथा नहीं ॥ ३२ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! तीनों जापमें विशेष कौनहै सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! आग्नेयपुराणके २९ अध्यायमें कहाहै यथा–

उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः ॥
जिह्वाजपे शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥
प्राङ्मुखोऽवाङ्मुखो वापि मंत्रकर्म समारभेत् ३३॥

अर्थ-वाचिक जापसे उपांशु जाप अर्थात् धीरे २ होठ और जिह्वासे जो जपे उसको उपांशु जाप कहतेहैं सो दशगुण विशेष है, उपांशुसे सौगुण विशेष फलहै केवल जिह्वासे जपनेका और जिह्वाजापसे सहस्रगुण फलहै मानस जापमें इसलिये मानस विशेषहै ॥ पूर्वमुख होकर अथवा उत्तरमुख होकर मन्त्र जाप करे हे शिष्य! कोई २ शास्त्रमें पश्चिममुख होकर भी जाप करनेको कहाहै परन्तु फलविशेष पूर्वोत्तरमें ही हैं ॥३३॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! जाप किसको कहतेहैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य! सिद्धांत पटलमें ऐसा कहाहै यथा-

मनोमध्ये स्थितो मंत्रः मंत्रमध्ये स्थितं मनः ॥
मनोमंत्रौ समायोगौ जाप्य इत्यभिधीयते ॥ ३४ ॥
पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः ॥
जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः ॥ ३५ ॥
उत्तमा सहजा वृत्तिर्मध्यमा ध्यानधारणा ॥
शास्त्रचिंताऽधमा प्रोक्ता तीर्थयात्राऽधमाऽधमा ३६ ॥

अर्थ-मनके बीचमें मन्त्र हो मन्त्रके बीचमें मन स्थित हो मन मन्त्र दोनों जब एक होजावें इसको जाप कहतेहैं ॥ ३४ ॥ कोटि पूजाके समान स्तोत्रके पाठ फलदायक है कोटिस्तोत्रके समान मन्त्र जाप है, कोटिजपके समान ईश्वरध्यान है कोटि ध्यानके समान लय होजाना है भाव चित्तकी वृत्ति ईश्वरमें लय होना सर्वोपरि है ॥ ३५ ॥ सहज वृत्ति याने सरल स्वभाव होना सबसे उत्तमावस्था है ध्यान धारण याने ध्यान लगाना मध्यमा वृत्ति है और शास्त्रके चिंता नाम विचार करना अधम याने तीसरा दर्जा है भाव शब्द ब्रह्ममें निपुणहो और परब्रह्मको न जाने सो विद्याऽभ्यास वृथा है और तीर्थयात्रा करना अधमसे अधम है भाव तीर्थयात्रा चौथा दरजा है काहेसे कि तीर्थयात्रा करनेवालेका मन एकाग्र होता नहीं इससे तीर्थयात्रा त्यागकर

काशीजीमें अथवा अयोध्याजीमें निवास करके श्रीसीतारामनामको जपे एही सिद्धांत सर्वोपरि है बाकी सब वृथा है ॥ ३६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! सब जापोंमें श्रेष्ठ कौन जाप है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य! सबसे विशेष अजपा जाप है इससे श्रेष्ठ जाप कोई नहीं है यथा—

अजपात्परतरो जापः नास्ति वेदांतगोचरे ॥

अर्थात् अजपासे परे जाप वेदविषयमें नहीं है (प्रश्न) हे स्वामीजी! अजपाजापके लक्षण क्या है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य! अजपाजापमें बहुत मतभेद होगयाहै कोई ब्रह्मगायत्रीको अजपा कहतेहैं कि—

अजपा नाम गायत्री मुनीनां मोक्षदायिनी ॥ ३७ ॥

अर्थात् अजपानाम गायत्री जो है सो मुनियोंको मोक्षदेनेवाली है ॥ ३७ ॥ कोई (सोहम्) को अजपा कहतेहैं परन्तु मेरा जो सिद्धांत है सो कहते हैं तुम सावधान होकर सुनो यथा पुलस्त्यसंहितायाम् ॥

रकाराज्जायते वायू रकाराच्छब्द उच्यते ॥
वाक्तत्त्वं च मकारेण राम एवेति वैश्रुतिः ॥ ३८ ॥
रकारेण बहिर्य्याति मकारेण विशेत्पुनः ॥
रामरामेति सच्छब्दो जीवो जपति सर्वदा ॥ ३९ ॥

अर्थ—रकार अक्षरसे वायु हुआ है जिसको (श्वाँस) कहतेहैं और रकारहीसे शब्द भया है और वाक्तत्व याने वचनका तत्त्व मकार है भाव मकारसे वचन भयाहै वही राम है ऐसा निश्चय वेद कहते हैं ॥ ३८ ॥ रकारसे श्वाँस बाहर होतीहै मकारसे प्रवेश करती है भाव श्वाँसके बाहर होनेमें रकार कहै श्वाँसके भीतर जानेमें मकार कहै इसीही राम राम सत्यशब्दको जीव सर्वदा जपतोहैं ॥ ३९ ॥ जिसको वादीलोग

(सोहम्) कहतेहैं सो कहना वृथा है इहांपर श्वाँसके निकसतमें रकार कहै श्वाँस प्रवेश करनेमें मकार कहै इसीको अजपाजाप कहते हैं (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अजपाजापका प्रमाण कितना है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! अजपाजापका प्रमाण २१६०० जाप है सो षट्चक्रके हिसाबसे जपना चाहिये तहां प्रथम आधारचक्र जो गुदामें हैं सो चार दलका है उसमें सर्व शक्तियोंके सहित गणेशजी निवास करते हैं और रामनामको जपते हैं सो १६०० रामनाम जपनेसे प्रकाश होता है दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र जो लिंगमें है सो ६ दल कमलकी है उसमें सावित्रीके सहित ब्रह्माजी रहते हैं और इन्द्रादिदेवताओंके सहित ६०००छःसहस्र श्रीरामनामको जपते हैंसो उतने ही रामनामके जपसे प्रकाश होताहै । तीसरा मणिपूरक चक्र जो नाभिमें है सो ९ अष्टदल कमलका है उसमें लक्ष्मीजीके सहित श्रीमन्नारायण रहते हैं और ६००० छः सहस्र श्रीरामनाम जपते हैं वह भी उतनेही रामनामके जपनेसे प्रकाश होता है चौथा अनाहतचक्र जो हृदयमें है सो द्वादश १२ दल कमलका है उसमें गिरजाजीके सहित योगिराज जगद्गुरु श्रीशिवजी निवास करते हैं और ६०००छःसहस्र श्रीरामनामको जपते हैं सो भी उतनेही रामनामके जपनेसे प्रकाश होता है । पंचम जो विशुद्ध चक्र कण्ठमें है सो षोडश १६ दल कमलका है उसमें अविद्या मायाके सहित जीव निवास करता है सो १००० एक सहस्र श्रीरामनाम जपनेसे प्रकाश करता है छठाँ आज्ञाचक्र जो भ्रूमध्यमें है सो दो दल कमलका है उसमें परमहंस आप निर्गुणस्वरूपसे वास करते हैं सो भी एक १००० सहस्र श्रीरामनामके जपनेसे प्रकाश होते हैं । उसके परे जो सहस्रदलकमल मूर्धामें है उसमेंही स्वयं सर्वशक्तिमान् अनन्तरूप गुणविशिष्ट आप विराजे हैं सो सर्वव्यापी अविनाशी सच्चिदानन्दके स्वरूप हैं (प्रश्न) हे स्वामीजी ! विष्णु शिवादिक जो रामनामको जपते हैं सो कहाँ प्रमाण है (उत्तर) हे शिष्य ! उसी पुलस्त्यसंहितामें ऐसा कहा है यथा-

सावित्री ब्रह्मणा सार्द्धं लक्ष्मीर्नारायणेन च ॥
शंभुना रामरामेति पार्वती जपति स्फुटम् ॥ ४० ॥

अर्थ–सावित्री ब्रह्माके सहित, लक्ष्मीनारायणके सहित और शिवजीके सहित पार्वतीजी रामराम ऐसा स्पष्ट नाम जपती हैं हे शिष्य ! इहांपर विशेष देखना हो तो 'वेदार्थप्रकाशरामायण' देखो–जिसमें विस्तारपूर्वक वर्णन है ॥ ४० ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! मंत्रजाप किस २ आसन पर बैठकर करे सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! अगस्त्यसंहिताके १० अध्यायमें अगस्त्यजीने ऐसा कहा है यथा–

कुशासने भवेदायुः मोक्षः स्याद्व्याघ्रचर्मणि ॥
अजिने सर्वसिद्धिः स्यात्कम्बले सिद्धिरुत्तमा ॥ ४१ ॥
वस्त्रासनेषु दारिद्र्यं धरण्यां शोकसम्भवः ॥
शिलायां च भवेद्व्याधिः काष्ठे व्यर्थपरिश्रमः ॥ ४२ ॥

अर्थ–कुशासनमें जपे तो आयुकी वृद्धि हो व्याघ्र (बाघ) के चर्ममें जपे तो मोक्ष हो भोजपत्रादि वल्कलपर जपे तो सर्वसिद्धिकी प्राप्ति हो कंबलपर बैठकर जपे तो उत्तम सिद्धिकी प्राप्ति हो तिसमें श्वेतकंबल अतिश्रेष्ठ है ॥ ४१ ॥ वस्त्रासन याने कपडापर जो जपे तो दरिद्री हो पृथ्वी पर जपे तो शोक हो तृणपर जपे तो हानि हो पाषाण (पत्थर) पर जपे तो रोगोत्पन्न हो काष्ठपर बैठके जपे तो परिश्रम वृथा हो ॥ ४२ ॥ स्वर्णपर सिद्ध हो चित्र कंबलपर बैठकर मंत्र जपे तो मन स्थिर हो । पुनरपि दक्षस्मृतिः–

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दंतधावने ॥
स्नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं समाचरेत् ॥ ४३ ॥
यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुंक्ते मौनेन सर्वदा ॥
युगकोटिसहस्रेषु स्वर्गलोके महीयते ॥ ४४ ॥

स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवताऽर्चनम् ॥
व्यूढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥४५॥

अर्थ-मलमूत्रके त्यागमें मैथुनमें होम करनेमें दंतधावन (दतोन) करनेमें स्नान करनेमें भोजनमें मंत्र जपनेमें मौन रहना चाहिये ॥ ४२ ॥ जो एक वर्षपर्यन्त मौन होकर भोजन करतेहैं वह मनुष्य असंख्य वर्ष स्वर्गलोकमें निवास करतेहैं ॥ ४४ ॥ स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवताओंके पूजन, वेदपाठ, तर्पण इन सब कर्मोंको पगपसारके नहीं करे, करे तो वृथा है ॥ ४५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! वैष्णवोंको किस २ मन्त्रका जाप करना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! वैष्णवोंको इन मन्त्रोंका जाप करना चाहिये यथा-

गायत्रीं विष्णुगायत्रीमष्टाक्षरमनुं तथा ॥
द्वादशार्णं षडर्णं च मंत्ररत्नमनुक्रमात् ॥
तद्विष्णोरिति सूक्तं च वेदादींश्च ततो जपेत् ॥४६॥

अर्थ-ब्रह्मगायत्री, विष्णुगायत्री, नारायण अष्टाक्षर मन्त्र, द्वादशाक्षर वासुदेवमन्त्र, षडक्षर राममन्त्र अथवा विष्णुमन्त्र मन्त्ररत्न (मन्त्रद्वये) चरमश्लोक गीता (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इसको तथा (तद्विष्णोः) सूक्त इतने मन्त्र जपकर पीछे वेदादिक विष्णुसहस्रनाम गीताआदिक पंचरत्नके पाठ करे ॥ ४६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! राममन्त्र कितना जपना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! शिवसंहितामें ऐसा कहाहै यथा-

एवं ज्ञात्वा जपेन्मंत्रं षट्सहस्रं दिनेदिने ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा त्रिशतं वाथ शक्तितः ॥ ४७ ॥

अर्थ-श्रीराममंत्र सर्वोपरि है जिसको देवता ऋषि मुनि तथा सब अवतार लोग जपतेहैं (एवं ज्ञात्वा) ऐसा जानकर मन्त्रराजको अक्षरप्रमाणसे ६ सहस्र तो अवश्य जपे नित्यप्रति अगर ६ सहस्र न

होसके तो एकही सहस्र जपे अथवा तीनही माला जपे तीन मालाभी न होसके तो यथाशक्ति एकही माला जपे ॥ ४७ ॥ हे शिष्य ! राममन्त्रको नित्यनेमसे जो जपतेहैं वह पुनः संसारमें आते नहीं यथा–

षट्सहस्रं सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव वा ॥
जप्तव्यो मंत्रिणा मंत्रो नोचेत्प्राप्नोत्यधोगतिम् ४८॥

अर्थ–छः सहस्र अथवा एक सहस्र चाहे तीनही सौ अथवा एकही सौ राममन्त्रको जो जपतेहैं वह अधोगति अर्थात् नरकमें नहीं जातेहैं ऐसा राममन्त्रका प्रभाव है इसलिये जबसे राममन्त्र लेना तबसे कुछ नेमपूर्वक अवश्य जपना चाहिये ॥ ४८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! राममन्त्रद्वयका प्रमाण कहाहै सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! राममन्त्रद्वयका प्रमाण स्कांदपुराणमें है यथा वैष्णवखण्डे–

द्वयाख्यं रामचन्द्रस्य मंत्ररत्नमनुत्तमम् ॥
पंचविंशाक्षरं विद्वान् स याति परमां गतिम् ॥४९॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रके मन्त्रद्वय जो सब मन्त्रोंमें रत्न है २५ अक्षर-वाला उसको जो विद्वान् लोग जपतेहैं सो परमपद साकेतलोकको जातेहैं ॥ ४९ ॥ हे शिष्य ! ऐसेही विश्वंभर उपनिषद्में कहाहै यथा ।

यो दाशरथेर्द्वयाख्यं मंत्राणां प्रवरं मंत्ररत्नमधीते ॥
स सर्वान्कामानश्नुते इति श्रुतिः ॥ ५० ॥

अर्थ–जो दाशरथीरामके मन्त्रद्वय सब मन्त्रोंमें शिरोमणि २९ अक्षरवाला मन्त्रको जपतेहैं वह अर्थ, धर्म, काम, मोक्षको प्राप्त होतेहैं ॥५०॥(प्रश्न) हे स्वामीजी ! रामोपासकोंको कौन २ मंत्र होना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! रामभक्तोंको तीन मंत्र अवश्य होना चाहिये एक तो षडक्षर, दूसरा मन्त्रद्वय, तीसरा शरणागतिमंत्र यह तीन रहस्य कथन कियाहै–

यथा प्रमाण मंत्रद्वय ॥
श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥
श्रीमते रामचन्द्राय नमः ॥ २ ॥
शरणागतमंत्र । वाल्मीकीये-
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ ५१ ॥
नारायणरहस्यत्रय । मंत्रद्वय ॥
श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥
श्रीमते नारायणाय नमः ॥ २ ॥ चरमश्लोक गीता ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ५२॥

अर्थ-हे शिष्य! राममन्त्र और नारायणमंत्र मिलाकर रामरहस्यत्रय तथा नारायणरहस्यत्रय जानना विना तीनोंके जाने वैष्णव यथार्थ नहीं होसक्ताहै इसलिये वैष्णवमात्रको यह सिद्धांत जानना अवश्य है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! तुलसीकी माला वैष्णवको किस २ अंगमें धारण करना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! शाण्डिल्य-संहिताके भक्तिखण्डमें ऐसा कहाहै । यथा-

कण्ठे शिरसि बाह्वोश्च कर्णयोः करयोर्हृदि ॥
तुलसी धार्यते येन स ज्ञेयो विष्णुना समः ॥५३॥
शिरसो धारणान्मोक्षः कीर्तिर्लोके तु कर्णयोः ॥
कण्ठे धृत्वा हरेर्लोकं हृदि बाह्वोः स्ववांछितम् ॥५४॥

अर्थ-कण्ठमें शिरमें और दोनों भुजाओंमें दोनों कानमें दोनों हाथमें हृदयमें जो तुलसी धारण करतेहैं उनको विष्णु भगवान्के समान जानना

चाहिये॥ ९३॥ शिरपर धारण करनेसे मोक्ष होती है कानमें धारण करनेसे लोकमें कीर्ति होती है कण्ठमें धारण करनेसे वैकुण्ठको जाते हैं हृदयमें भुजामें धारण करनेसे स्ववांछित प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥ हे शिष्य ! एक सहस्र तुलसीकी मणि बनाकर सर्वांगमें धारण करना चाहिये और एकही सहस्र (हजारा) बनाकर जपे इहांपर्यन्त अंतिम प्रमाण है। हे शिष्य ! (हजारा) माला तुलसीकी और स्वर्ण (सोने) की बनाना चाहिये अन्यका नहीं ऐसा वैष्णवशास्त्रका सिद्धांत है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! किस युगमें कौन माला प्रमाण है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! शाण्डिल्यसंहितामें ऐसा कहा है-

मुनीनां मंजरी माला पत्रमाला दिवौकसाम् ॥
तुलसीकाष्ठमाला तु नृणां धार्या सदोदिता ॥९५॥
कृतेऽस्या बीजजां मालां त्रेतायां मंजरीभवाम् ॥
द्वापरे दलदामास्ति काष्ठदामा कलौ स्मृता ॥९६॥

अर्थ-मुनियोंको मंजरीकी माला पत्रके माला देवताओंको चाहिये और तुलसीकाष्ठकी माला केवल मनुष्योंके लिये कहा है ॥ ९५ ॥ सत्ययुगमें तुलसीबीजकी माला है त्रेतामें मंजरी (पुष्प) की माला कही है द्वापरमें तुलसीपत्रकी माला है और कलियुगमें केवल तुलसीकाष्ठकी माला धारण करनेको कहा है ॥ ९६ ॥ पुनरपि तत्रैव-

शिरसो मंजरी माला दलदाम गले मतम् ॥
गलाद्धृदयपर्यन्तं तुलसीकाष्ठमालिका ॥ ९७ ॥
ध्याने स्यान्मंजरीदाम पत्राणां पूजनोत्तरम् ॥
काष्ठदाम सदा धार्य्यमाजन्ममरणाऽवधि ॥ ९८ ॥

अर्थ-शिरपर मंजरीमाला पत्रोंकी माला कण्ठमें चाही और कण्ठसे हृदयपर्यन्त तुलसीकाष्ठकी माला धारण करना चाहिये ॥ ९७ ॥

ध्यानमें मंजरीकी माला चाही पत्रोंकी माला पूजनमें चाही और तुलसीकाष्ठकी माला आजन्मसे मरणपर्यंत धारण करना चाहिये ॥ ॥ ५८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! कोई २ आचार्यका मत है कि, सब कालमें तुलसी धारण नहीं करना चाहिये केवल पूजनकालमें धारण करना चाहिये सो क्यों (उत्तर) हे शिष्य ! इस विषयमें कोईके मत है कि केवल पूजनहीमें धारण करना कोईके मत है कि सब कालमें धारण करना चाहिये सो सबही मत ठीक हैं इसमें तर्क करना वृथा है काहेसे कि, गोस्वामी तुलसीदासजीने रामायणमें कहा है कि "तहां वेद अस कारण राखा ॥ भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा " भाव यह है कि, प्रभु अनंत हैं प्रभुके मंत्रभी अनंत हैं जिस आचार्यने जिस मंत्रानुसार भजन किया है वह सबही सिद्धांत प्रामाणिक हैं इसीलिये संप्रदायमें अनेक भेद हैं सो प्रभुके अनंतताका कारण है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! दूसरेकी धारण करीहुई माला धारण करे कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! अन्यकी धारण करी माला नहीं धारण करना चाहिये दोष है यथा पुलस्त्यसंहितायाम्-

न धारयेदन्यधृतां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ॥
मालां गृह्णन्नवाप्नोति सोपि गोब्रह्महा भवेत् ॥ ५९ ॥
परकण्ठगतां मालां यो बिभर्ति द्विजाधमः ॥
तस्य पापं स गृह्णाति जन्मकोटिशतोद्भवम् ॥ ६० ॥

अर्थ-अन्यकी धारण करीहुई माला नहीं धारण करे यदि माला ग्रहण करे तो करतेही मात्रमें वह पुरुष गोहत्या ब्रह्महत्याका भागी होता है ॥ ५९ ॥ जो दूसरेके गलेकी माला धारण करते हैं वह ब्राह्मणोंमें पापी है वह अन्यकी माला नहीं लेते हैं मानों उनके सौ कोटि जन्मके पापोंको ग्रहण करते हैं इसलिये अन्यकी माला कभी भूलकर भी नहीं धारण करे ॥ ६० ॥ हे शिष्य ! स्वयं अपने हाथसे निर्माण

करे अथवा दूसरेकी बनी मालाको पंचगव्यमें स्नान कराकर धारण करे और जो माला बनाकर साधु वैष्णवोंको देतेहैं वह कोटि ब्रह्माण्ड दानके फल पाते हैं इसवास्ते माला बनाकर अवश्य देना चाहिये (प्रश्न) हे स्वामीजी ! पंचगव्यके लक्षण क्या हैं और किस प्रमाणसे बनावे सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! पंचगव्यके लक्षण अत्रिस्मृतिमें और पाराशरस्मृतिमें ऐसा कहा है यथा—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥
निर्दिष्टं पञ्चगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥ ६१ ॥
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥ ६२ ॥
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव च ॥
मूत्रमेकपलं दद्यादंगुष्ठार्द्धं तु गोमयम् ॥ ६३ ॥
क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दधि त्रिपलमुच्यते ॥
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—गोमूत्र १ गोमय (गोबर) २ क्षीर ३ दधि ४ घृत ५ कुशके जल यह पंचगव्य है सो महापापोंके नाश करनेवाला है ॥ ६१ ॥ काली गौके मूत्र श्वेत गौके गोबर ताम्रवर्णवाली गौके दुग्ध लाल गौके दधि कपिला गौके घृत लेना अथवा सबही कपिला गौके लेना चाहिये । एक पल मूत्र देना अंगुष्ठके आधा गोबर देना सात पल क्षीर देना तीन पल दधि देना एक पल घृत देना एकही पल कुशोदक देना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ हे शिष्य ! पलके प्रमाण ८ तोला जानना (प्रश्न) हे स्वामीजी ! मालाशब्दके अर्थ क्या है सो कहिये । (उत्तर) हे शिष्य ! मालाके अर्थ ऐसा कहा है यथाऽऽगमे—

दाने लाधातुनिर्दिष्टो लासि मां हरिवल्लभे ॥
भक्तेभ्यश्च समस्तेभ्यस्तेन माला निगद्यते ॥ ६५ ॥

अर्थ–हे हरिवल्लभे ! जैसे आप सब भक्तोंको भक्तिदान देती हो वैसेही (मा) नाम मेरेको भी हरिभक्ति (ला दाने) धातुसे देउँ यह मालाशब्दके अर्थ हुआ ॥ ६५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! मालाधारण किस मन्त्रसे करे सो कहिये । (उत्तर) हे शिष्य ! मालाधारण इस मन्त्रसे करे यथा–

तुलसीकाष्ठसंभूते माले विष्णुजनप्रिये ॥
बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां रामवल्लभम् ॥६६ ॥

अर्थ–प्रार्थनापूर्वक बोले कि हे तुलसीकाष्ठसे उत्पन्न हुई माले ! आप भगवत्भक्तोंको बहुत प्यारी हो इससे आपको मैं कण्ठमें धारण कर-ताहूं मेरेको श्रीरामजीके प्यारे करो । यह मंत्र पढकरके माला धारण करे ॥ ६६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! जिसके कण्ठमें तुलसी नहीं है उसके हाथके अन्नोदकादि स्वीकार करे कि नहीं ? (उत्तर) हे शिष्य ! जिसके कण्ठमें तुलसी नहीं है उसके हाथके कुछ भी न अंगीकार करे बडा दोष है । यथा स्कांदे–

यत्कण्ठे तुलसी नास्ति ते नरा मूढमानसाः ॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पीयूषं रुधिरं भवेत् ॥ ६७ ॥
ततः सर्वेषु कालेषु धार्या तुलसिमालिका ॥
क्षणार्द्धं तद्विहीनोपि विष्णुद्रोही भवेन्नरः ॥ ६८ ॥

अर्थ–जिसके गलेमें तुलसी नहीं है वह मनुष्य मूर्ख पापी है, उसके हाथके अन्न विष्ठा है जल मूत्र है अमृत रुधिर है ॥ ६७ ॥ उससे सर्व-कालमें तुलसीकी माला सदा धारण करे क्षणमात्र त्यागे तो विष्णुद्रोही हो ॥ ६८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब आप गुरुमाहात्म्यको कृपा

करके कहिये (उत्तर) हे शिष्य! गुरुमाहात्म्यको तो शेष शारदाभी कहिनहीं सकते हैं तो मेरी क्या गिनती है जिसने गुरुस्वामीके सेवा पूजा किया नहीं उसका भी जन्म वृथाही जानना चाहिये। हे शिष्य! गुरु और ईश्वर दोनों एकही हैं इनमें भेदबुद्धि कभी नहीं रखना चाहिये जो गुरु ईश्वरमें भेद रखते हैं वह मरकर नरकमें जाते हैं हे शिष्य! गुरुके सामने मिथ्या बोलना नहीं, चंचलता करना नहीं, किसीके निंदा स्तुति करना नहीं, विना आज्ञा कहीं जाना नहीं, और सामने सोना नहीं, बैठना नहीं, आज्ञा हो तो बैठजाना, पीठ देकर बैठना नहीं, पग पसारना नहीं, आसनपर बैठना नहीं, चरण पादुका पहनकर चलना नहीं, किसीसे वादविवाद करना नहीं. गुरु उच्छिष्टको भोजन करना. गुरु जब सोजावे तब सेवादि करके आज्ञा पाकर सोवे और उठे प्रथम गुरु निंदा न करे न सुने गुरुसे द्वेष ईर्षा न करे करे, तो यह दशा होती है। यथा मनुः-

गुरोर्यत्र परीवादो निंदा वापि प्रवर्तते॥
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गंतव्यं वा ततोऽन्यतः॥६९॥
परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः॥
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी॥७०॥

अर्थ-जहाँ गुरुके अपवाद हो अपवाद उसको कहते हैं कि, जो दोष हो उसको कहै, निंदा उसको कहते हैं कि, मिथ्या दोष लगाना जहाँ कोई करे तहां कान दोनों बंदकर अन्यत्र उठकर चलदेवे॥ ६९॥ अपवाद करनेसे गदहा होते हैं निंदा करनेसे श्वान होते हैं भोगनेसे कीड़ा होतेहैं ईर्षा करनेसे मोटा कीड़ा होतेहैं॥ ७०॥ हे शिष्य! गुरुसे उत्तर प्रतिउत्तर न करना क्रोध न करना मूर्खता न करना गुरुको हुंकार तुंकार न करना गुरुके आज्ञा सदैव करना गुरुके कियाहुआ न करना बड़ा दोष है यथा-

गुरोराज्ञां सदा कुर्य्यान्न तदाचरणं क्वचित् ॥

अर्थ–हे शिष्य ! जिस गुरुस्वामीने भगवत्संबन्धि ज्ञान दिया उन गुरुसे उऋण होना कठिन है (प्रश्न) हे स्वामी ! यदि गुरु लोभी हो क्रोधी हो तो माने की नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! चाहै गुरु कैसाभी हो तोभी शिष्यका धर्म है कि गुरुको ईश्वरही जाने यथा शाण्डिल्यसंहितायाम्–

एवं गुरुरपि ज्ञेयः क्रोधनो नृहरिः स्वयम् ॥
लुब्धस्त्रिविक्रमो ज्ञेयो द्रोग्धा परशुभृत्स्वयम् ॥ ७१ ॥
ज्ञानदो व्यास एवासौ सत्यसंधस्तु राघवः ॥
विज्ञानदः कृष्ण एव नानालीलाकरः प्रभुः ॥ ७२ ॥
भक्तिदो नारदः साक्षात्तपोनिष्ठो महामुनिः ॥
इत्येवं भावना तस्य शिष्यैः कार्या यथायथा ॥ ७३ ॥

अर्थ–ऐसा गुरुको जाने क्रोधी हो तो स्वयं नरसिंह भगवान् जाने लोभी हो तो वामन भगवान जाने द्रोही गुरुको परशुरामजी जाने ॥ ७१ ॥ ज्ञान देनेवालेको वेदव्यास भगवान जाने सत्यसंध हों तो श्रीराघवजी जाने विज्ञान देनेवाले गुरुको श्रीकृष्णही जाने ॥ ७२ ॥ भक्ति देनेवाले हों तो साक्षात् नारदही जाने तप करनेवाले हों तो महामुनि नरनारायण ही जाने । इसप्रकारसे शिष्य गुरुस्वामीमें भावना करे ॥ ७३ ॥ हे शिष्य ! कहीं २ लिखाहै कि, निन्दकी गुरुको बौद्धभगवान जानना चाहिये भाव यह है कि कैसाभी गुरु हो तोभी ईश्वर ही करके जाने बल्कि ईश्वरसेभी गुरुको विशेष जाने यथा " तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी । सकल भावसे वहि सनमानी " इत्यादि कहाहै सोई भाव वैष्णवसाधुवोंमें करना चाहिये यथा । " मोरे मन प्रभु अस विस्वासा । रामतें अधिक रामकर दासा । " इससे गुरुमें ईश्वरमें सदा अभेद भाव राखे यथा शाण्डिल्यसंहिताभक्तिखण्डे ।

यथा मन्त्रे तथा देवे यथा देवे तथा गुरौ ॥
पश्येदभेदतां मन्त्री एवं भक्तिक्रमो मुने ॥ ७४ ॥
अभक्तिभजनाल्लोके देवताक्लेशदायकः ॥
गुरुरीश्वर एवेति सद्भक्तिक्रम एव हि ॥ ७५ ॥
मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे वैष्णवे भेषजे गुरौ ॥
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ ७६ ॥

अर्थ–जैसा भाव मन्त्रमें राखे तैसेही भाव मन्त्रके देवतामें राखे और जो भाव देवतामें वही भाव गुरुमें राखे मंत्र जपनेवालेको चाहिये कि मन्त्रमें ईश्वरमें गुरुमें अभेद देखे भक्तिकी रीति यही है ॥ ७४ ॥ विना भक्तिके भजन करनेसे देवता दुःख देतेहैं इससे ईश्वरमें गुरुमें अभेदभक्ति करे भक्तिकी रीति यही है ॥ ७५ ॥ मंत्रमें तीर्थमें ब्राह्मणमें ईश्वरादिदेवतामें वैष्णव साधुमें औषधीमें गुरुमें जैसा भाव राखे वैसेही सिद्धि होतीहै ॥ ७६ ॥ हे शिष्य ! ईश्वर गुरु सन्तके स्वरूप धारण करके जीवोंके कल्याणार्थ पृथ्वीमें विचरतेहैं इससे गुरु स्वामीजीके पासमें रहे तो नित्य पूजन करे दर्शन करे चारकोश पर गुरु हों तो दश दिनमें पन्द्रह दिनमें दर्शन करे चार कोशसेभी दूर हों तो महीना दिनमें दर्शन पूजन करे अगर उससेभी दूर हों तो एक वर्ष अर्थात् व्यासपूजा (गुरुपुनों) को दर्शन करे उससेभी विशेष दूर हों तो गुरुमूर्तिका ध्यान करके उधर सन्ध्या सबेरे नित्य दंडवत करलिया करे (प्रश्न) हे स्वामीजी ! नित्य गुरुपूजन करने चाहै तो कैसे करे (उत्तर) हे शिष्य ! गुरुस्वामीजीके चरणपादुका नित्य पूजन करे, नहीं तो चरण करके अंकितवस्त्रको जिसको पंचकल्लोर (त्रिवीड़ी) कहतेहैं सो पूजे यथा शाण्डिल्यसंहितायां

रिभक्तिखण्डे–

श्रीगुरोश्चरणौ पूज्यौ पादुके वापि भक्तितः ॥
नियमो यः सदा धार्यो लब्धमन्त्रैश्च दीक्षितैः ७७॥
समक्षे वा परोक्षे वा गुरोराज्ञाऽनुसारतः ॥
पूजयेत्पादुकायुग्मं पटं वापि तदंकितम् ॥ ७८ ॥
गुरुमूर्तिः परं ब्रह्म पादुकायां व्यवस्थितम् ॥
तस्मात्तत्पादुके पूज्ये तद्भक्तैर्नित्यदार्चने ॥७९॥

अर्थ–श्रीगुरुस्वामीके चरणकमल पूजे अथवा भक्तिसे चरणपादुका पूजे यह नित्यनेम धारण करे जबसे मंत्र लेवे ॥ ७७ ॥ सामने अथवा पीछे गुरुके आज्ञाऽनुसार दोनों पादुका पूजे अथवा चरणचिह्न करके युक्त वस्त्रको पूजे ॥ ७८ ॥ काहेसे कि गुरुमूर्ति परब्रह्म पादुकामें स्थित है तिससे चरणपादुका नित्यनेमसे भक्तिपूर्वक पूजे और गुरुके चरणोदक धोकर तीर्थसंबंधि शुद्ध मृत्तिकामें पिण्ड बांधकर धरलेवे उससे नित्य चरणोदक लियाकरे ॥ ७९ ॥ हे शिष्य ! यह चरणोदक भगवत्के चरणोदकसे पूर्वही लेना चाहिये और चरणपादुका तो अवश्यही पूजे यथा शाण्डिल्यः—

गुरूणां पादुके पूज्ये विप्राणां चरणद्वयम् ॥
ऋषीणां निलयं पूज्यं पितॄणां पिण्डमेव च ॥ ८० ॥
सिंहासनं नरेन्द्राणां महतामनुशासनम् ॥
देवानां मूर्तयः पूज्याः सर्वेषां च यथायथम् ॥८१॥

अर्थ–श्रीगुरुकी चरणपादुका पूज्य हैं ब्राह्मणोंके दोनों चरण पूज्य हैं ऋषियोंके स्थान पूज्य हैं पितरलोगोंके पिण्डही पूज्य हैं और बडे पुरुषोंकी आज्ञा पूज्य है देवताओंकी मूर्ति पूज्य है राजाओंके सिंहासन पूज्य हैं इसीप्रकारसे यथायोग्य सबही पूज्य हैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! भगवान्‌के भक्तोंको शुभाशुभ कर्म भोगना परता है कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! यह प्रश्न तुम्हारा सर्वथा अयोग्य है

भगवान्‌के भक्त होकरभी शुभाशुभ कर्म भोगेगा तो वैष्णव होनेका फलही क्या हुआ और हमारे प्रभुका बड़प्पनही कहां रहा इससे भगवद्भक्त सबसे रहित हैं यथा ब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे—अ० ६

जन्ममृत्युजराव्याधिभयं च यमयातना ॥
अन्येषां कर्मिणामस्ति न भक्तानां च कर्हिचित् ८२
भक्ता न लिप्ताः पापेषु पुण्येषु सर्वकर्मिणः ॥
अहं धुनोमि तेषां च कर्मभोगान् सुनिश्चितम् ८३॥

अर्थ—भगवत्वचन है कि जन्म, मरण, जरा, व्याधि, भय और नरकके नानादुःख यह दुःख औरके वास्ते हैं हमारे भक्तोंके वास्ते नहीं हैं ॥ ८२ ॥ हमारे भक्त पापपुण्यमें नहीं लिप्त होते हैं भक्तोंके पाप पुण्यरूप कर्मभोगोंको मैं नाश करताहूं ॥ ८३ ॥ हे शिष्य ! इसीप्रकारसे बहुत प्रमाण हैं भगवतभक्त नरक स्वर्ग नहीं जाते हैं चाहे जैसा हो भगवानके भक्त वैकुण्ठही जाते हैं यथा प्रमाण—

हरिभक्ता गमिष्यंति भक्त्या श्रीपतिसन्निधौ ॥
ताडिते हि पलायंते तस्य कर्माणि द्वारतः ॥ ८४ ॥

अर्थ—भगवत्‌भक्त भक्तिसे जब भगवानके समीपमें जाते हैं तब भगवत्‌भक्तोंका किया जो शुभाशुभ कर्म है सो पीछे २ जाता है जब वैकुण्ठके दरवाजेपर पहुँचता है तब द्वारपाल पार्षदोंके ताड़ना करनेसे शुभाशुभ कर्म भागजाता है और जिसने साधु वैष्णवोंकी सेवा किया है उसके पास भगवान्‌की आज्ञासे पुण्य चलाजाता है, और जिसने वैष्णवोंकी निंदा किया है उसके ऊपर पाप चलाजाताहै इससे साधुका निंदा कभी न करे साधुनिंदकोंका भला नहीं होता है ॥८४ ॥

इति श्रीमदयोध्यावासिना वैष्णवसाधुश्रीसरयूदासेन विरचिते श्रीवैष्णवकुलभूषणसारसंग्रहे गुरुशिष्यसंवादे भाषाटीकायां श्रीतुलसीमाला धारणविधिजपलक्षणगुरुमाहात्म्यवर्णनं नामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हरिः ॐ शांतिः ३

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब आप कुछ वर्णाश्रमकी व्यवस्था कहिये चारों वर्णके उत्पत्ति संस्कार यज्ञोपवीतकी विधि तथा चारों युगके भिन्न२ धर्म कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! चारों वर्णकी उत्पत्ति कहते हैं तुम सावधान होकर सुनो यथा वेद—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ॥
ऊरू यदस्य तद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ १ ॥

अर्थ—जिनके मुखसे ब्राह्मण हैं भुजासे क्षत्रिय कटिप्रदेशसे वैश्य पदसे शूद्र उत्पन्न हुआ है ॥१॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! ईश्वरने वर्णभेद क्यों किया सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य! ईश्वरकी जो सृष्टि है सो सबही कर्मानुसार है इसलिये वर्णभेद है केवल वर्णभेदही नहीं है भेद तो सब वस्तुमें जैसे कि रंग रूपमें भेद है चालचलनमें भेद है सबकी बुद्धिमें भेद है पशु पक्षियोंमें नानाभेद हैं वृक्षोंमें भेद है पुष्पलतादिमें भेद है अन्न जलादिकमें भेद है हे शिष्य ! कहांतक कहैं विना भेद कुछ नहीं है इसका कारण यही है सब सृष्टि कर्मानुसार बनी है इससे जैसा जिसका कर्म है वैसेही उसमें भेद है सो सब भगवत् इच्छासे लोक वृद्धिके वास्ते ईश्वरने किया है यथा प्रमाण मनुस्मृतौ—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ २ ॥

अर्थ—लोकोंकी वृद्धिके लिये मुखसे भुजासे कटिसे पदसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रको निर्माण करते हैं इससे वर्णभेद सृष्टिभेद अनादि-सिद्ध है ॥ २ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! मुखसे कौन ब्राह्मण हुए हैं भुजासे कौन क्षत्रिय हुए हैं ऊरूसे कौन वैश्य हुए हैं और पदसे कौन शूद्र हुआ है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! इसका विस्तार भूलयतन्त्रमें शंकरजीने पार्वतीजीसे कहा है यथा—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि जातीनां च विनिर्णयम् ॥
अव्यक्ताच्च समुत्पन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३ ॥
ब्रह्मणा निर्मिता वर्णा मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव यथाक्रमम् ॥ ४ ॥

अर्थ-शिवजी बोले कि, हे देवि तुम सुनो मैं जातियोंका निर्णय कहताहूं अव्यक्त ब्रह्मसे ब्रह्मा विष्णु महादेव तीनों उत्पन्न हुए हैं तिनमें ब्रह्माजीने मुखसे ब्राह्मण भुजासे क्षत्रिय कटिसे वैश्य पादसे शूद्रको यथाक्रमसे निर्माण किया है ॥ ३-४ ॥

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥
भृगुर्वशिष्ठश्च्यवनो नारदो दक्ष एव च ॥ ५ ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिताः ॥
वेदाध्ययनसम्पन्नास्त्रिषु वर्णेषु पूजिताः ॥ ६ ॥

अर्थ-तिनमेंसे मरीची १ अत्रि २ अंगिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ भृगु ७ वशिष्ठ ८ च्यवन ९ नारद १० दक्ष ११ यह ग्यारह पुत्र हुए तिसमें नारदजीको छोडकर और सबने सृष्टि किया तिन सबके पुत्र पौत्र सब ब्राह्मणकुलमें श्रेष्ठ हुए और वेदाध्ययन (वेद-पाठ) करके युक्त हुए तथा 'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः' इस मनुके वचनसे क्षत्रिय वैश्य शूद्रकरके पूजित हुए ॥ ५ ॥ ६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! ब्राह्मण कौन २ हैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! हारीतस्मृतिमें ऐसा कहा है यथा प्रमाण-

ब्रह्म ब्रह्मा ब्राह्मणश्च त्रितयं ब्राह्मणमुच्यते ॥
तस्माद्ब्राह्मेण विधिना परं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-ब्रह्म श्रीमन्नारायण और ब्रह्माजी तथा ब्राह्मण यही तीन ब्राह्मण कहा है चौथा नहीं ॥ ७ ॥ तिसमें ब्राह्मणको चाहिये कि वेदविधिसे

श्रीनारायणका पूजन करे अन्य देवताका नहीं इसीसे कहा है कि 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।' ब्रह्मको जाने भाव ईश्वरका पूजन स्मरण करे वही ब्राह्मण है यह प्रसंग (वेदार्थप्रकाशरामायण) में विस्तारसे कहा है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! ब्राह्मण कितने कारणसे होते हैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! ब्राह्मण होनेके तीन कारण महाभाष्यमें कहा है यथा-

तपः श्रुतं च योनिश्च ह्येतद्ब्राह्मणकारणम् ॥
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥८॥

अर्थ-तप करना वेद पढना और ब्राह्मणयोनिमें जन्म लेना इतना ब्राह्मणका मुख्य कारण है और जो वेदपाठसे तपसे हीन है वह जाति-ब्राह्मण है ॥ ८ ॥ ऐसेही पतंजलिजीने कहा है यथा-

विद्यातपोभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥

अर्थ-इत्यादि कहा है ऐसा न होता तो विश्वामित्रजी क्यों तप करते केवल जातिब्राह्मणकेही वास्ते घोर तप किया तब वशिष्ठजीके कहनेसे ब्रह्मर्षि हुए यद्यपि करके विश्वामित्रजीके उत्पत्ति है ब्राह्मणत्वही शक्तिसे सोभी कितना तप किये इससे जातिब्राह्मणभी होना कठिन है काहेसे कि, ब्राह्मण जन्महीसे श्रेष्ठ हैं यथा मनुः-

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ॥ ९ ॥

अर्थ-अर्थात् ब्राह्मण जन्मग्रहणमात्र हीपृथिवीके समस्त जीवोंसे श्रेष्ठ होता है ॥९॥(प्रश्न) हे स्वामीजी ! ब्राह्मण यदि मूर्ख हो शूद्र विद्वान् हो तो मानना चाहिये कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! ब्राह्मण चाहे कैसा भी मूर्ख हो तोभी पूज्य है और शूद्र कैसाभी विद्वान् हो गुणी हो तोभी पूज्य नहीं होसकता है यथा पाराशरस्मृतौ-

दुःशीलोपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः ॥
कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् १०॥

श्वचर्मणि यथा क्षीरमपेयं ब्राह्मणादिभिः ॥
तद्वच्छूद्रमुखाद्वाक्यं न श्रोतव्यं कथंचन ॥ ११ ॥
पण्डितस्यापि शूद्रस्य शास्त्रज्ञानरतस्य च ॥
वचनं तस्य न श्राव्यं शुनोच्छिष्टं हविर्यथा ॥१२॥

अर्थ–दुःशीलभी ब्राह्मण पूज्य है जितेन्द्रिय शूद्र नहीं कौन दुष्ट गौको छोड़कर सुशील गधीको दुहे जैसे श्वानके चर्म (चमड़ा) में दुग्ध ब्राह्मणादि चारोंवर्णोंको पीनेयोग्य नहीं है उसीही प्रकारसे शूद्रमुखकी वाणी कभी न श्रवण करना बडा दोष है । पंडित शूद्र जो शास्त्रज्ञानमें चतुर हों तोभी उसके वचनको न श्रवण करे जैसे श्वानके जूँठा हविष्य त्याज्य है ॥१०॥११॥१२॥ हे शिष्य ! ऐसेही श्रीगोस्वामीजीनेभी कहाहै " सापत ताडत परुष कहंता । विप्र पूज्य अस गावहिं संता । पूजिय विप्र शीलगुणहीना । शूद्र न गुणगण ज्ञान परवीना । " इत्यादि कहाहै इससे शूद्र कैसाभी हो तोभी अपूज्य है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! भगवान्के भक्त शूद्र हो तो पूजे कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! वैष्णव भगवत्भक्त सबही पूज्य हैं भगवत्भक्तोंमें जातिका विचार करना दोष है सो प्रथमही लिखिआयेहैं (प्रश्न) हे स्वामीजी ! जो ब्राह्मण अवैष्णव हैं उनकेभी वाणी श्रवण करे कि, नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! अवैष्णव पंडितके वचनभी नहीं श्रवण करे यथा–

अवैष्णवस्य पाण्डित्यं सर्वशास्त्रसमन्वितम् ॥
वचस्तस्य न गृह्णीयाच्छुनालीढं हविर्यथा ॥१३॥

अर्थ–अवैष्णव पंडित जो कि, सर्वशास्त्रसंयुक्त हों तो भी उनके वचनको न ग्रहण करे जैसे कि, श्वानके जूठा हविष्य त्याज्य है॥१३॥ हे शिष्य ! इसी प्रकारके बहुतही प्रमाण हैं (प्रश्न) हे स्वामीजी

ब्राह्मणमें कितना भेद है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! ब्राह्मणोंमें दश भेद शङ्कराचार्यने कहाहै यथा–

सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडमैथिलउत्कलाः ॥
पञ्च गौडसमाख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः॥१४॥
तैलंगा द्राविडाश्चैव महाराष्ट्राः करणाटकाः ॥
गुर्जराताश्च पंचैते विंध्यदक्षिणवासिनः ॥ १५ ॥

अर्थ–सारस्वत १ कान्यकुब्ज २ गौड ३ मैथिल ४ उत्कल ५ यह पंच गौड करके विख्यात हैं सो विंध्याचलके उत्तर निवास करतेहैं । और तैलंगी १ द्राविडी २ महाराष्ट्री ३ करणाटकी ४ गुजराती ५ ए पंचद्राविड कहातेहैं और विन्ध्याचलपर्वतके दक्षिणप्रांतमें निवास करतेहैं इन सबको कान्यकुब्ज कहतेहैं ॥ १४॥ १५॥ मागध माथुरको छोडकर यथा–

सर्वे द्विजाः कान्यकुब्जा माथुरं मागधं विना ॥
मागधो ब्रह्मणा पूर्वं कल्पितो द्विज एव च ॥
वाराहस्य तु घर्मेण माथुरो जायते तथा ॥ १६ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त दशों ब्राह्मण कान्यकुब्ज हैं केवल माथुर (चौबे) को छोड़कर और मागध (कथिक मघैया) को छोडकर काहेसे कि मागध ब्राह्मणको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने दशों ब्राह्मणसे भिन्न कल्पित कियाहै और माथुरिया चौबे वाराहभगवानके पसीनासे उत्पन्न हुएहैं इससे भिन्न हैं ॥ १६ ॥ पुनरपि–

मागधं माथुरं चैव शाकाशानाढ्ययोषिकाः ॥
पंच विप्रा न पूज्यंते पूजिता निष्फला भवेत्॥१७॥

अर्थ–मागध १ माथुर (चौबे) २ शाकद्वीपी ३ शानाढ्य ४ योषिक ५ ए पंच ब्राह्मणको न पूजे यदि मूर्खतासे पूजे तो निष्फल हो ॥ १७ ॥ हे शिष्य ! ऐसेही अत्रिस्मृतिमें कहाहै यथा प्रमाण–

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः ॥
श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीयाः कदाचन ॥ १८ ॥
श्राद्धं च पितरं घोरं दानं चैव तु निष्फलम् ॥
यज्ञे च फलहानिस्स्यात्तस्मात्तान् परिवर्जयेत् ॥ १९॥
आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः ॥
चतुर्विप्रा न पूज्यंते बृहस्पतिसमा यदि ॥२०॥
मागधो माथुरश्चैव कार्पटः कीटकानजौ ॥
पंच विप्रा न पूज्यंते बृहस्पतिसमा यदि ॥ २१ ॥

अर्थ–ज्योतिषी ब्राह्मण अथर्वणवेदके पढनेवाले (कीराः) जहाँ तहाँ शुकपक्षीकी तरह कहनेवाले पुराणके पढनेवाले इन सब ब्राह्मणोंको श्राद्धमें यज्ञमें महादानमें कदापि वरण करे भाव और ब्राह्मण न मिले तबही वरण करे । श्राद्धमें वरण करे तो पितर लोग घोर नरकमें जायँ दान देवे तो वृथा हो यज्ञमें फलहानि हो इससे इन सबको वर्जदेवे । आविक (भेंडके पालनेवाले) ब्राह्मण चित्र बनानेवाले वैद्य ज्योतिषी इन चारोंको न पूजे चाहै बृहस्पतिके समान क्यों न हो । मागध माथुर कर्पट देशके वासी ब्राह्मण कीटदेश (मगह) के वासी ब्राह्मण कानदेश (मगहदेशके पूर्वप्रांत) के ब्राह्मण इन पांचों ब्राह्मणोंको न पूजे यदि बृहस्पतिके बराबर क्यों न हों (प्रश्न) हे स्वामीजी ! और ब्राह्मणोंमें क्या भेद है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! अत्रिस्मृतिमें दशप्रकारके भेद औरभी कहा है यथा—

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निषादकः ॥
पशुर्म्लेच्छोपि चाण्डालो विप्रा दशविधाःस्मृताः२२

अर्थ–देवब्राह्मण १ मुनिब्राह्मण २ द्विजब्राह्मण ३ क्षत्रियब्राह्मण ४ वैश्यब्राह्मण ५ शूद्रब्राह्मण ६ निषादब्राह्मण ७ पशुब्राह्मण ८ म्लेच्छ

ब्राह्मण ९ चाण्डालब्राह्मण १० ए दश प्रकारके ब्राह्मण कहा है तिन-सबके लक्षण भिन्न २ वर्णन करते हैं ॥

संध्यां स्नानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् ॥
अतिथिर्वैश्यदेवश्च देवब्राह्मण उच्यते ॥ २३ ॥
शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ॥
निरतोहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ २४ ॥
वेदांतं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजेत् ॥
सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते॥२५॥

अर्थ-संन्ध्या, स्नान, जप, होम, नित्य देवताका पूजन, अतिथि (अभ्यागत) की सेवा करना, बलि, वैश्वदेवादि पंचयज्ञ इन सबको जो नित्यनेमसे करे वह देवब्राह्मण कहा है ॥ शाकमें पत्रमें कंदमूल-फलमें वनवासमें जो सदा रत हैं भाव वानप्रस्थ धर्ममें जो सदैव निपुण हैं और श्राद्ध नित्य करते हैं वह मुनिब्राह्मण कहा है ॥ जो वेदांत नित्य पठते हैं सर्वसंग याने संसारसे अलग होजाते हैं और सांख्ययो-गके विचारमें स्थित हैं वह द्विजब्राह्मण कहा है ॥

अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसम्मुखे ॥
आरंभे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ॥ २६ ॥
कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः ॥
वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥२७॥
लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुंभक्षीरसर्पिषः ॥
विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ-युद्धमें सबके संमुख धनुष बाणादि अस्त्रोंको लेकर युद्ध करना और सब शत्रुवोंको मारकर जीतना वह क्षत्रियब्राह्मण कहा है

जैसे परशुरामजी हुए हैं ॥ कृषि (खेती) कर्ममें रत और गौवोंको जो पालन करनेवाले हैं और व्यापार कर्ममें जो निपुण हैं वह वैश्यब्राह्मण कहाते हैं ॥ लोह, लवण, कुसुमके पुष्प, दूध, घृत, मधु, मांसादिके जो विक्री करे वह शूद्रब्राह्मण है पुनरपि-

चौरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा ॥
मत्स्यमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते २९॥
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितम् ॥
तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ३० ॥

अर्थ-चोर हो तस्कर (डाकू) हो चुगलखोर हो दंशक (घातक) हो मछरी, मांसमें सदा लुब्ध हो याने गृध्रके समान मछरी मांसको खाताहो वह निषादब्राह्मण है ॥ जो ब्राह्मण होकर ब्रह्मतत्त्वको नहीं जानते हैं केवल ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) के अभिमानमें गर्क रहते हैं वह उसीही पापकरके पशुब्राह्मण कहाजाता है ॥

वापीकूपतडागानामारामस्य सरस्सु च ॥
निश्शंकनिरोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ३१
क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ॥
निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ-बावडी, कूप तालाब, बाग, भारी सरोवर इन सबको निश्शंक नाम निडर होकर रोके नाशकरे भाव अन्यकी कीर्तिको जो नाशकरे वह म्लेच्छ (यवन) ब्राह्मण कहा है ॥ जो क्रियाहीन मूर्ख है और सब धर्मोंसे विवर्जित है जिनको सब जीवोंपर दया नहीं है वह चाण्डालब्राह्मण है हे शिष्य ! इसप्रकारके कर्मानुसार दशब्राह्मण शास्त्रमें कहा है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! मछरी मांसके खानेवाले निषादब्राह्मण कहा सो क्यों मछरीमांस तो बडे २ विद्वान् लोग खाते हैं और

शास्त्रके प्रमाणभी देते हैं कि, मछरी मांस खाना चाहिये इसमें दोष नहीं है यथा ॥ मनुः––

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ॥

अर्थ–इत्यादि बहुत प्रमाण देते हैं कि, न मांस खानेमें दोष है न मद्य पीनेमें दोष है न स्त्रीप्रसंगमें दोष है पुनः इहांपर मछरी मांसके खानेवालेको निषादब्राह्मण क्यों कहा (उत्तर) हे शिष्य ! इस विषयमें बहुत प्रमाण देनेसे ग्रंथ विस्तार होजायगा इससे थोरा प्रमाण देकर तुम्हारे संदेहको दूर करते हैं तुम सावधान होकर श्रवण करो ॥ हे शिष्य ! मन्वादिक धर्मशास्त्रके देखनेसे मालूम होता है कि मांसादिक खाना उत्तम धर्म नहीं है मध्यम धर्म है उत्तम धर्म सात्त्विक है जिससे कि मोक्ष होता है और मध्यम धर्म राजसी है जिससे स्वर्गकी प्राप्ति होती है निकृष्ट धर्म तामसी है जिससे कि नरक होता है मनुजीका सिद्धांत है कि, यज्ञमें पशु मारकर देवताओंको भाग देकर शेष मांस खावे इसमें दोष नहीं है और विना यज्ञके जो पशु मारकर खाते हैं उनको दोष है वह नरकमें जाते हैं फिर कहते हैं कि अध्याय ५ ॥

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ॥
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ३३ ॥

अर्थ–शुक्र और शोणित अर्थात् वीर्य और रुधिररूप घिन उपजानेवाली मांसकी उत्पत्तिको जानि और प्राणियोंका मारना तथा बांधना क्रूर कर्म जानि सर्वप्रकारके मांसको न खाय इहां सर्वमांस कहनेसे कहा हुआभी मांस न खाना चाहिये इससे साबित हुआ कि, जीवको बांधना मारना कसाईके तरह निर्दईका काम है यह कर्म ब्राह्मणोंका नहीं है इसीसे ' अहिंसा परमो धर्मः ' कहा है और मांस खानेवालेका जन्म मरण नहीं छूटता है काहेसे कि, जो जिसके मांसको इहां खाते हैं वह उसके मांसको दूसरे जन्ममें खाते हैं ए मांसके अर्थ मनुजीने कहा है यथा–

मांसभक्षयितामुत्र तस्य मांसमिहाद्म्यहम् ॥
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ३४ ॥

अर्थ–इहां जो जिसके मांसको खानेवाला है वोभी उसके मांसको खानेवाला है इसको ऋषिलोग मांस कहते हैं इससे मांस खाना ठीक नहीं है इहां जो जिसको मारता है बांधता है खाता है वोभी उस दुष्टको दूसरे जन्ममें वैसे ही मारता खाता है इसलिये उत्तम पुरुषोंके काम हैं कि, संसारमें मनुष्य शरीर पाकर अपना जीवन और दूसरेका जीवन वृथा करना महामूर्खता है और तुम जो श्लोक कहा है वह ऐसा है यथा–

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ॥
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ३५ ॥

अर्थ–इसका अर्थ यह है कि न मांस खानेमें दोष है न मद्य पीनेमें दोष है न स्त्रीप्रसंगमें दोष है यह जीवोंके प्रवृत्ति नाम स्वभाव है भाव ए है कि, जो जीवको इन कुकर्मोंमें दोष देखपरता तो ए कर्म कभी नहीं करते इन दुष्ट जीवको जन्म २ से स्वभाव पररहा है इसलिये पापकर्मोंको भी उत्तम जानकर वार २ करता है इससे इन दुःखदाई स्वभावको छोडकर निवृत्ति होनाही महाफल है इसलिये जीवको दुःख देना ठीक नहीं है यथा–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ॥
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ–अठारह पुराणमें व्यासजीके दोही वचन मुख्य सिद्धांत हैं एक तो यह है कि परोपकार करना पुण्य है दूसरेको दुःख देना पाप है इससे मनुष्यदेह पाकर तिसमेंभी सर्वोत्तम ब्राह्मणशरीर पाकर राक्षसकी तरह जीवहत्या करना और मांस मछरी खाना महानीच कर्म है धिक्कार है ऐसे राक्षसी बुद्धिवालेको हे शिष्य ! केवल जिह्वाके कारण कसाईके

काम करना धिक्कार है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! देवी दुर्गादिको जो बकडा भैंसा काटते हैं सो कहीं प्रमाण है कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य! देवी दुर्गाके सामने जो बकड़ा भैंसा काटते हैं सो भी मूर्ख हैं और राक्षस हैं यह काम केवल बंगालदेशसे चला है और चलते २ भागलपुर मुंगेर दर्भंगा प्रान्त मिथिला लेकरके विशेष है और कुछ २काशीके पूर्वप्रान्तमेंभी है बाकी और किसी देशमें यह राक्षसी कर्म नहीं है देवी दुर्गाके पूजन सर्वदेशमें हैं परन्तु सात्त्विक पूजन है मेवा मिठाईसें करते हैं हे शिष्य ! देवीपूजनमें दो भेद हैं एक वाममार्ग दूसरा देवमार्ग तिसमें देवमार्गके वेदमें विधान है वाममार्गके निंदा है इसलिये वेदमें देवी दुर्गाके सामने बकड़ा भैंसा काटना कहीं नहीं लिखा है और वाममार्ग जो है सो राक्षसी धर्म है लंकामें राक्षसलोग भद्रकालीके पूजन निकुम्भिलास्थानमें करते थे और काला बकड़ा जीते होम करतेरहे सो वाल्मीकीय रामायणादिमें प्रसिद्ध है और तुलसीदासजीने भी कहा है कि "आहुति देत रुधिर अरु भैंसा " इत्यादि कहा है इसीही राक्षसी धर्मको वाममार्गी लोगने वेदसे विरुद्ध धर्म चलाया है और पंचमकारको मोक्ष देनेवाला कहा है यथा-

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ॥
एते पञ्च मकाराश्च मोक्षदा हि युगेयुगे ॥ ३७ ॥
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक्पृथक् ॥ ३८ ॥
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले ॥
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३९ ॥
मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु ॥
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ॥ ४० ॥

अर्थ-मद्य पीना मांस खाना मछरी खाना और मुद्रा (वाममार्गीके विशेष चिह्न धारण करना) अथवा मिथ्या पाठ भी है कहीं २ इससे मिथ्या बोलना यह पांच मकार निश्चय करके युगयुगमें मोक्ष देनेवाला है । प्रवृत्ते भैरवीचक्रे-भाव देवी दुर्गा भैरवके स्थानमें आनेसे याने जहां वाममार्गीलोग एकत्र होकर खाते पीते हैं वहां आनेसे सब जाति ब्राह्मण होजातेहैं और उस स्थानसे चलदेनेसे सब जाति अलग अलग होजातेहैं । मद्यको बारबार पीपीकर जबतक जमीनमें नहीं गिरतेहैं फिर उठकर पीवे । भाव गिरे उठे पीवे ऐसा करनेसे फिर जन्म नहीं लेतेहैं मुक्ति होजातीहै । एक माताको छोडकर सब स्त्रियोंसे मैथुन करे वेदपुराणोंमें सबको वेश्याके समान मानना कहाहै । भाव जैसे वेश्याके पास जानेमें दोष नहीं है तैसेही सब स्त्रियोंके पास जानेमें दोष नहीं है । हे शिष्य ! यह वाममार्गी पाखण्डियोंके सिद्धान्त हैं कहो इन दुष्टोंको कहां कल्याण होगा, इन्ही दुष्टोंने जहां तहां श्लोक बनाकर पुराणादिकमें मिला दियाहै और अच्छे २ विद्वान्लोग कहतेहैं कि "न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने" यह श्लोक भी वाममार्गियोंहीका मिलाया है काहेसे कि मनुजीके सिद्धांतमें मिलता नहीं है । हे शिष्य ! इसी वाममार्गीके सिद्धांत बकडा भैंसा काटनेका है सो वेदपुराणसे विरुद्ध है जैसा कि तुलसीदासजीनेभी कहाहै यथा "तजि श्रुति पंथ वाम पथ चलहीं । वंचक विरचि वेष जग छलहीं ।" जो वेद-मार्गको छोडकर वामपथ अर्थात् वाममार्ग चलते हैं वह नरकमें जातेहैं इसलिये वाममार्गीके सिद्धांत छोडकर सन्मार्गके अवलम्ब लेनाही उत्तम है और ब्राह्मणोंके लिये तो केवल नारायणही उपास्य है यथा वशिष्ठः-

नारायणः परं ब्रह्म ब्राह्मणानां हि दैवतम् ॥
सोमसूर्यादयो देवाः क्षत्रियाणां विशामपि ॥

शूद्रादीनां तु रुद्राद्या अर्चनीयाः प्रकीर्तिताः ॥४१॥
॥ तथा पाद्मोत्तरखण्डे भृगुरुवाच ॥
शुद्धसत्त्वमयो विष्णुः कल्याणगुणसागरः ॥
नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं हरिः ॥ ४२ ॥
स एव पूज्यो विप्राणां नेतरः सुरसत्तमः ॥
मोहाद्यः पूजयेदन्यं स पाखण्डी भविष्यति ॥४३॥

अर्थ—नारायण परब्रह्म ब्राह्मणोंके देवताहैं और चन्द्र सूर्यादिक देवता क्षत्रिय वैश्यके हैं और शिव, दुर्गा, गणेश, भैरव शूद्रोंके लिये कहाहै भाव इन सबके पूजन शूद्रादिक नीचलोग करें । कल्याणगुणके सागर शुद्ध सत्त्वगुणी विष्णु अर्थात् सर्वव्यापी नारायणही परब्रह्म ब्राह्मणोंके मुख्य देवता हैं ब्राह्मणोंके लिये वही नारायणही पूज्य हैं अन्य देवता नहीं । यदि मोहसे याने अज्ञानसे अन्य देव देवीको पूजे तो पाखण्डी होतेहैं । इत्यादि बहुतही प्रमाण हैं इससे कल्याणके चाहनेवालेको चाहिये कि, तामसी राजसीको त्यागकर सात्त्विकी धर्मका सेवन करे इसीसे मछरी मांस खानेवाले ब्राह्मणको निषाद कहा । हे शिष्य ! ब्राह्मणोंके ए धर्म नहीं हैं कि, राक्षसी कर्म करना किसीको दुःख देना ब्राह्मणोंके धर्म तो गीतामें कहाहै कि शम, दम तप, शौच, शांति, सरल, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य ए लक्षण हैं ब्राह्मणोंके फिर राक्षसीकर्म जीवहत्याकरना मद्य, मांस, मछरी खाना पतितोंके काम हैं अस्तु ' गुन अवगुन जानहिं सब कोई । जो जेहि भाव नीक सो तेही । ' फिरभी देखो जिस मनुस्मृतिके बकडा भैंसा खानेवाले प्रमाण देतेहैं उसमें ए नहीं लिखाहै कि देवी, दुर्गाके सामने बकडा भैंसा काटकर खाजाना वहाँ तो मनुजी वैदिक यज्ञके विधान कियाहै उसमें देवताओंको भाग देकर खानेको कहा सो भी ' कृते तु मानवा धर्माः ' इस शास्त्रके सिद्धांतसे मनुस्मृतिके धर्म

सत्ययुगके लिये है कलियुगके वास्ते नहीं है कलियुगमें तो पाराशरस्मृतिके अनुसार वैष्णवही धर्म प्रधान है मनुजीके प्रमाण देना ठीक नहीं है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब आप चारों वर्णका धर्म कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! चारों वर्णके धर्म मनुस्मृतिमें और गीताजीमें विस्तारसे वर्णन कियाहै यथा मनुस्मृतौ—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥४४॥

(गीतायां)

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४५॥

अर्थ—वेदका पढ़ाना १ पढ़ना २ तथा यज्ञकराना ३ यज्ञ करना ४ और दान लेना ५ दान देना ६ ये छः कर्म ब्राह्मणोंको कहा है—गीता—सब जीवोंमें समता रखना १ दशों इन्द्रियको दमन याने वश करना २ तपकरना ३ बाह्य भीतर शौच करना ४ शांति धारण करना ५ दया भाव सब जीवोंके ऊपर दया करना यह नहीं कि राक्षसी कर्म करना ६ ज्ञान अर्थात् अपने स्वरूपको जानकर मिथ्या संसारके प्रपंचसे अलग होना ७ विज्ञान नाम परब्रह्मके यथार्थ स्वरूपको जानकर भजन करना ८ आस्तिक्य—वेदशास्त्रपुराणादिको मानकर तदनुकूल कर्म करना, ९ ये नौ कर्म परम पुनीत ब्राह्मणके स्वाभाविक कहा है । (प्रश्न) हे स्वामीजी ! गीताजीके सिद्धांत मनुसे भिन्न क्यों हैं ? (उत्तर) हे शिष्य ! मनुस्मृति धर्मशास्त्र है और गीता वेद है इस लिये गीताके सिद्धांत प्रबल हैं (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब क्षत्रियोंके उत्पत्ति व धर्म कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! भूलयतंत्रमें शिव जीने कहा है—

ब्रह्मणो बाहुदेशाच्च मनुःस्वायंभुवोऽभवत् ॥
वामबाहोः समुत्पन्ना शतरूपा पतिव्रता ॥ ४६ ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च क्षत्रवंशे प्रतिष्ठिताः ॥
चतुर्दशमनूनां च वंशास्ते क्षत्रजातयः ॥ ४७ ॥

अर्थ-ब्रह्माके दक्षिण (दहिनी) भुजासे स्वायंभू मनु हुए और वाम बाहुसे शतरूपा पतिव्रता उत्पन्न हुई ॥ ४६ ॥ तिन मनु शतरूपाके पुत्र पौत्र सब क्षात्रियोंके वंशमें प्रतिष्ठित हुए और चौदह मनु याने स्वारोचिषमनु १ उत्तममनु २ तामसमनु ३ रैवतमनु ४ चाक्षुषमनु ५ वैवस्वतमनु ६ सावर्णिमनु ७ दक्षसावर्णि ८ ब्रह्मसावर्णि ९ धर्मसावर्णि १० रुद्रसावर्णिमनु ११ देवसार्णिमनु १२ इन्द्रसावर्णिमनु १३ पूर्वोक्त स्वायंभुमनु लेकर ये १४ मनु क्षत्रियजाति हैं ॥ ४७ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! क्षत्रियोंके कर्म क्या हैं सो कहिये ! (उत्तर) हे शिष्य ! मनुस्मृतिमें ऐसा कहा है-

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ४८ ॥
गीतायाम्-शौर्य्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-प्रजाओंकी रक्षाकरना, दानदेना लेना नहीं, वेदपढ़ना पढाना नहीं, यज्ञकरना कराना नहीं और विषयभोगमें आसक्त नहीं होना ये सब धर्म क्षत्रियोंके हैं ॥ ४८ ॥ गीतामें शूरता १ तेज याने प्रताप २ धीरज ३ चातुर्य्य ४ युद्धमें भागना नहीं ५दान देना ६ प्रजाके रक्षार्थ अपनेको ईश्वरभाव याने समर्थ जानना ७ ये सब कर्म क्षत्रियोंके स्वभावहीसे हैं ॥ ४९ ॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब वैश्यके उत्पत्ति व धर्म कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! भूलयतंत्रमें शिवजीके वचन हैं-

ऊरुदेशात्समुत्पन्नो ब्रह्मणः प्राणवल्लभे ॥
भलंदनेति विख्यातस्तस्य पत्नी मरुत्वती॥ ५० ॥

अर्थ-शिवजी बोले कि, हे प्राणप्रिये ! ब्रह्माके कटिदेशसे भलंदन नाम करके वैश्य हुआ जो कि, सर्वत्र विख्यात हुआ तिनके स्त्री मरुत्वती हुई तिनके पुत्र प्रांशु हुए प्रांशुको ६ पुत्र हुए मोद १ प्रमोद २ बाल ३ मोहन ४ प्रमर्दन ५ शंकुकर्ण ६ तिन सबके कर्म भिन्न २ हुए मोदके पुत्र वितकर्ण हुए उनको २० वीश पुत्र हुआ सो सब गोपवंश याने वैश्यजातिमें श्रेष्ठ हुए हे शिष्य ! यह सब प्रसंग भूलयतंत्रमें विस्तारसे कहा है ॥ ५० ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! वैश्यके कर्म क्या हैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! वैश्यके कर्म मनुजीने ऐसा कहा है-

पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च ॥
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥
गीतायां-कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्५१

अर्थ-पशुवोंकी रक्षा करना १ दान देना लेना नहीं २ यज्ञ करना कराना नहीं ३ वेद पढना पढाना नहीं ४ व्यापार करना ५ कुसीद नाम सूद लेना ६ कृषि (खेती) करना ७ ए सब कर्म वैश्यके हैं ॥गीता॥ खेती करना गौवोंका पालन व्यापार इत्यादि कर्म वैश्यका स्वाभाविक है ॥ ५१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब शूद्रके उत्पत्ति व कर्म कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! शूद्रके व्यवस्था उसीही भूलयतंत्रमें शिवजीने कहा है यथा-

चिन्तनाद्ब्रह्मदेवस्य चित्रगुप्तोऽभवत्पुरा ॥
लेखनीमषिपात्रेण संयुक्तो लोकविश्रुतः ॥ ५२ ॥
मम कायात्समुत्पन्नश्चित्रगुप्तेतिनामतः ॥

धर्माधर्मविवेकार्थं सदा यमपुरे वस ॥ ५३ ॥
कायस्थसंज्ञको वर्णाश्चतुर्णां तदनन्तरम् ॥
समुद्भूतो यतस्त्वं हि शूद्रवर्णो प्रतिष्ठितः ॥ ५४ ॥

अर्थ-ब्रह्मदेवके चिंतवन करनेसे पूर्वकालमें चित्रगुप्त हुआ सो लेखनी (कलम) माषिपात्र (दवाइत) करके संयुक्त लोकमें विख्यात हुआ तब ब्रह्माजीने कहा कि, मेरे कायासे उत्पन्न हुआ है इसलिये चित्रगुप्त नामसे प्रसिद्ध हो और धर्म अधर्मके विवेकार्थ अर्थात् पाप पुण्य लिखनेके वास्ते सदा यमपुरीमें वसो । और मेरे कायासे होनेके कारण कायस्थसंज्ञावाले चौथा वर्ण शूद्रमें प्रतिष्ठित होगा तुमको वेदशास्त्र पढनेका अधिकार नहीं है केवल ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके सेवा करना और लिखना गनना (हिसाब करना) एही तुम्हारा धर्म है ब्राह्मणोंके निरादर न करना उपासना भवानीकी करना इत्यादि बहुतही कहा है और विश्वकर्माके पुत्री कीर्तिमतीसे तुम्हारी सादी होगी उसमें द्वादश पुत्र होंगे अर्थात् श्रीवास्तव्य १ गौड २ नागर ३ माथुर ४ अम्बष्ठ ५ शक्रसेन ६ करण ७ अहिष्ठान ८ पंचाल ९ वाल्मीकि १० वाष्कल ११ सूरध्वज १२ ए द्वादश प्रकारके कायस्थ हैं इन्हींके पुत्र पौत्र शूद्रवर्णमें हुये हैं यह सब भूलयतन्त्रमें लिखा है ॥ ५२-५४ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! कायासे होनेके कारण कायस्थ नाम हुआ और शूद्र तो पदसे उत्पन्न हुआ है फिर कायस्थकोही शूद्र कहना कैसे सिद्ध हुआ जिसमें पदसे होना हो सो कहिये (उत्तर)हे शिष्य ! भूलयतन्त्रमें सब भेद स्पष्ट शिवजीने करदिया है यथा-

तपस्यंतं च ब्रह्माणं सत्यलोके पुरैकदा ॥
प्रस्वेदश्च समुद्भूतो ललाटात्पतितः पदे ॥ ५५ ॥
तस्माज्जातः पुमानेकः श्यामः कमललोचनः ॥
लेखनी च मषीपात्रं विभाति करकञ्जयोः ॥ ५६ ॥

अर्थ-एक समय सत्यलोकमें ब्रह्माजीके तप करते हुए प्रस्वेद (पसीना) उत्पन्न होकर ललाटसे पदपर गिरा उससे एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जिनके श्याम कमलसे नेत्र दोनों हाथमें लेखनी (कलम) मषीपात्र (दवाइत) करके शोभित है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकारसे कहा है इससे येही चित्रगुप्त ही पदसे हुआ है (प्रश्न) हे स्वामीजी! आजकलके कायस्थ जो हैं सो तो अपनेको क्षत्रिय मानकर यज्ञोपवीत लेलिये हैं सो क्यों (उत्तर) हे शिष्य ! जो कायस्थ अपनेको क्षत्रिय मानकर यज्ञोपवीत लिये हैं सो महामूर्ख हैं कोटि कल्प नरकमें जायँगे और जो ब्राह्मण मूर्ख लोभके वश होकर कायस्थ कुर्मी आदि शूद्रोंको यज्ञोपवीत देते हैं वह भी नरकमें जायँगे हे शिष्य ! कलियुग है इसमें शूद्रही योग, जप, तप, व्रत, दान करैंगे और करते हैं यथा- "शूद्र कराहिं जप तप व्रत दाना ॥ मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥" तथा-"बैठि बरासन कहहिं पुराना ।" इत्यादि कहा है इससे शूद्रको इस अन्यायसे बचना चाहिये कायस्थके लक्षण ऐसा कहा है स्कांदपुराणे ॥

विद्यावांश्च शुचिर्धीरो दाता परोपकारकः ॥
राजभक्तः क्षमाशीलः कायस्थः सहकुलः ॥९७॥

अर्थ-विद्यावन्त नाम लिखा पढीमें निपुण १ शुचि-पवित्र रहनेवाले २ दाता ३ परोपकारी ४, राजभक्त नाम राजदरबारके कामकाज करनेवाले ५, बड़े धीरजवाले ६, क्षमाशीलवाले, लक्षण कायस्थके हैं ॥ ९७ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! शूद्रके कर्म क्या हैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! शूद्रके कर्म मनुजीने ऐसे कहे हैं-

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ ९८ ॥
पुनरपि [illegible] कर्म शूद्र-

स्यापि स्वभावजन् ॥ स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥ ५९ ॥

अर्थ-ईश्वरने शूद्रके वास्ते एकही कर्म कहाहै कि निंदासे रहित होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना ॥ ५८ ॥ गीताजीके भी सिद्धांत हैं कि सेवा करना ही कर्म शूद्रका स्वाभाविक धर्म है शूद्रके लिये दूसरा धर्म नहीं है अपने २ वर्णानुकूल कर्ममें तत्पर रहनेहीसे सिद्धिको मनुष्य प्राप्त होतेहैं । भाव वर्णाश्रमको त्याग करके सिद्धिको प्राप्त नहीं होतेहैं किन्तु पतित ही होजातेहैं ॥ ५९ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! भगवत् भक्त वैष्णवोंके लिये वर्णाश्रम धर्म है कि नहीं सो कृपाकरके कहिये ? (उत्तर) हे शिष्य ! वर्णाश्रम धर्म सबके वास्ते है और भगवत्भक्त वैष्णवोंके लिये तो विशेष करके है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! कोई २ महात्मालोग कहते हैं कि वैष्णवसाधु विरक्तोंके लिये वर्णाश्रम नहीं है जैसे कि " जिमि हरि भगति पाइ जन, तजहिं आश्रमी चारि " इत्यादि कहतेहैं सो क्यों इस भेदको अवश्य कृपा करके कहिये ? (उत्तर) हे शिष्य ! इहांपर तन्मय वृत्ति वालेके लिये कहाहै जैसा कि आदिपुराणमें कहाहै यथा प्रमाण-

स्मर्तव्यं सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ॥ सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः ॥ ६० ॥

अर्थ-भगवत्स्मरण सतत नाम निरंतर करना कभी न भूलना उनके वास्ते सब विधि निषेध दासहै । भाव निरंतर प्रेममें मगन रहने वालेको त्याग है कुछ व्यवहारीके लिये नहीं है ॥ ६० ॥ हे शिष्य ! बहुतलोग शास्त्रके तात्पर्य जाने विना केवल प्रमाण देनेको सिखलेतेहैं सो भूल है जहां वर्णाश्रमका त्याग लिखाहै तहाँ दशाप्राप्तिकी बात है और जो दशाप्राप्तिसे रहितहै उनके वास्ते यह वचन नहीं है शास्त्रमें अधिकारी प्रति वचन है हे शिष्य ! दशाप्राप्त

वालेके भी लिये वर्णाश्रम त्याग नहीं है तहाँ भी लोगोंके उपदेशार्थ कर्तव्य है इसलिये वर्णाश्रम नहीं त्यागे त्यागनेसे दोष है यथा स्कांदपुराणे–

मन्निमित्तं कृतं कर्म कर्मलोपो भवेद्यदि ॥
तत्कर्म कुरुते नित्यं तिस्रः कोट्यो महर्षयः ॥६१॥

अर्थ–भगवतवचन है कि मेरे लिये जो कर्म याने सेवा पूजा भजन स्मरण करते २ वर्णाश्रम कर्म यदि लोप होजाय तो उनके लिये वर्णाश्रमके कर्म ३३ कोटि महर्षिलोग करतेहैं ॥६१॥ जिससे कि वर्णाश्रमके धर्मकर्म त्यागनेको दोष उनको नहीं लगे इससे वर्णाश्रमको कभी भूलकर न त्यागे त्यागे तो पतित होजावे हे शिष्य! साधु वैष्णव होकर वेदपुराणको नहीं मानतेहैं वो भगवद्द्रोहीहैं यथा–

श्रुतिः स्मृतिर्ममैवाज्ञे यस्तामुल्लंघ्य वर्त्तते ॥
आज्ञाछेदी मम द्रोही न विप्रो न च वैष्णवः॥६२॥

अर्थ–भगवतवचन है कि वेदशास्त्र हमारी आज्ञा है, उसको जो उल्लंघन करतेहैं भाव वेदशास्त्रसे जो प्रतिकूल चलतेहैं वह हमारे आज्ञाके छेदन करनेवाले हमारे द्रोही हैं न वह ब्राह्मण हैं न वैष्णवही हैं ॥ ६२ ॥ इससे वेदशास्त्रकी मर्यादा न त्यागे (प्रश्न) हे स्वामीजी! श्रीगीताजीका श्लोक जो है–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः६३॥

अर्थ–इसका क्या अर्थ है सो कृपा करके कहिये (उत्तर) हे शिष्य! भगवान् अर्जुनको कहतेहैं कि सब वर्णाश्रम धर्मको याने वर्णाश्रम धर्मके फलत्यागपूर्वक एक मेरा ही शरणको प्राप्तहो तब सब पापोंको नाश करके मोक्ष दूंगा मत शोच करो ॥ ६३ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! इहां कोई २ विद्वान् कहतेहैं कि सब धर्मोंको त्याग

देना ही अर्थ ठीक है (उत्तर) हे शिष्य ! ए अर्थ अद्वैतवादियोंका है जो वर्णाश्रमसे पतित होरहेहैं अपना सिद्धान्त नहीं है (प्रश्न) हे स्वामीजी यदि शूद्र वैष्णवसाधु होजावें तो उनको ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कुलके वैष्णव साधुवोंसे कैसे वर्ताव करना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! जैसा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंके परस्पर न्यूनाधिक प्रीति है उसी ही प्रकारसे साधु होनेपर भी होना चाहिये, तब तो कल्याण है नहीं तो हरि इच्छा है । हे शिष्य ! आजकल तो शूद्रोंकी वृद्धि है ब्राह्मण क्षत्रियको तो कुछ समझते ही नहीं हैं, सो बडी भूलकी बात है ताते शूद्रको ब्राह्मणादिसे अवश्य डरना चाहिये और विचारसे भोजनादिवर्ताव करना चाहिये (प्रश्न) हे स्वामीजी ! ब्राह्मण होकर शूद्रको साष्टांग दण्डवत करे तो क्या दोष है (उत्तर) हे शिष्य ! ब्राह्मण होकर जो शूद्रको दंडवत करतेहैं वह शूद्र रसातलको जातेहैं, इसलिये शूद्रको दंडवत करना धर्म नहीं है और न उचित है शूद्रको कि ब्राह्मणसे दंडवत कराना सो कलियुगकी महिमासे बडी दुष्टता है क्या करें बडी आश्चर्यकी बात है । "निराचार जो श्रुतिपथत्यागी । कलिजुग सोइ ज्ञानी सो विरागी । सूद्र कराहिं जप तप व्रत दाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना । शूद्र द्विजन्ह उपदेशहिं ज्ञाना । मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना । पूजिय विप्र शील गुन हीना । शूद्र न गुनगन ज्ञानप्रवीना" इत्यादि कलियुगको धन्य है हे शिष्य ! जिन वैष्णव-साधु शूद्रको भगवतभक्तिकी यथार्थ प्राप्ति नहीं हुई है उन शूद्रको शबरी विदुरकी उपमा देना वृथा है, यह बात भला शूद्रको क्यों अच्छी लगेगी, न लगे परन्तु कहना अपना धर्म है ।

इति श्रीमदयोध्यावासिना वैष्णवसाधुश्रीसरयूदासेन विरचिते श्रीवैष्णवकुल-भूषणसारसंग्रहे गुरुशिष्यसंवादे भाषाटीकायां वर्णाऽश्रमधर्म-वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब आप यज्ञोपवीतके नव सूत्रके लक्षण व बनानेकी विधि कहिये किस प्रकारसे यज्ञोपवीत बनावे (उत्तर) हे शिष्य ! ब्रह्मसूत्रके लक्षण (स्कांदपुराण) में नारदजीने श्रीब्रह्माजीसे बूझा है यथा—

श्रीनारद उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नवसूत्रस्य लक्षणम् ॥
कस्मिन्वसति को देवस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

ॐकारः प्रथमे सूत्रे द्वितीयेऽग्निः प्रकीर्तितः ॥
तृतीये तक्षकश्चैव चतुर्थे सोम एव च ॥ २ ॥
पंचमे पितृदेवस्तु षष्ठे चैव प्रजापतिः ॥
सप्तमे वायुदेवस्यादष्टमे रविरेव च ॥
नवमे सर्वदेवास्तु नवसूत्रस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—श्रीनारदजी ! बोले कि, हे भगवन् ! नवसूत्रका लक्षण मेरेको सुनवेकी इच्छा है कौन देवता किस सूत्रमें वसते हैं वह कहिये ॥ ब्रह्माजी बोले कि, ॐकार प्रथम सूत्रमें वसते हैं दूसरे सूत्रमें अग्निदेव तीसरें सूत्रमें तक्षक सर्प वसते हैं चौथे सूत्रमें चन्द्रमा वसते हैं पंचम सूत्रमें पितृदेव (अर्यमा) वसते हैं छठवें सूत्रमें प्रजापति (ब्रह्मा)जी वसतें हैं सातवें सूत्रमें वायुदेव वसते हैं अठवें सूत्रमें सूर्यभगवान वसते हैं। नौवें सूत्रमें ३३ कोटि देवतालोग वसते हैं ए नवसूत्रके लक्षण हैं ॥ ॥ १–३ ॥ पुनः नारद उवाच ॥

केन चोत्पादितं सूत्रं केनेदं त्रिगुणीकृतम् ॥
ग्रन्थिबंधः कृतः केन मंत्रितं चाभिषेचनम् ॥ ४ ॥

(ब्रह्मोवाच)

मयाचोत्पादितं सूत्रं विष्णुना त्रिगुणीकृतम् ॥
ग्रंथिबंधस्त्रिनेत्रेण गायत्र्याचार्यमंत्रितम् ॥ ५ ॥

अर्थ–किसने सूत्र तैयार किया किसने त्रिगुणी किया किसने ग्रंथि बंधन किया और किसने मंत्राभिषेचन किया सो कहिये ॥ ब्रह्माजी बोले कि, मैंने तो सूत्र बनाया विष्णु भगवानने त्रिगुणी किया त्रिनेत्र (शिव) जीने ग्रंथिबंधन किया और आचार्य्यने गायत्रीमंत्रसे अभिषेचन किया भाव यज्ञोपवीतके देनेवाले गुरु ब्राह्मणने गायत्री तीनवार पढकर यज्ञोपवीत दिया ॥ ४ ॥ ५ ॥ पुनः ॥

निष्फलं बहते भारे यो न जानाति लक्षणम् ॥
कर्मवाह्यो द्विजो नूनमपूज्यो लोकनिंदितः ॥ ६ ॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय स्नानकालेषु यः पठेत् ॥
कर्माधिकारी भवति ब्रह्मचर्यफलं लभेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–जो मनुष्य यह यज्ञोपवीतके लक्षण नहीं जानते हैं उनके सब निष्फल हैं केवल यज्ञोपवीतभार (बोझा) बहते हैं इसलिये वैष्णव ब्राह्मणको ए नवसूत्रका लक्षण अवश्य जानना चाहिये प्रातःकाल उठके अथवा स्नानकाल जो कोई मनुष्य पढे वह सब कर्मोंके अधिकारी होते हैं और ब्रह्मचर्य फलको प्राप्त होंगे ॥ ६ ॥ ७ ॥

हे शिष्य ! ऐसेही नवसूत्रके लक्षण छन्दोगपरिशिष्टमें कहे हैं यथा–

ॐकारः प्रथमे तंतौ द्वितीयेऽग्निस्तथैव च ॥
तृतीये नागदैवत्यं चतुर्थे सोमदेवता ॥ ८ ॥
पञ्चमे पितृदैवत्यं षष्ठे चैव प्रजापतिः ॥ ९ ॥
सप्तमे मारुतश्चैव अष्टमे सूर्य एव च ॥
सर्वदेवास्तु नवमे इत्येतास्तंतुदेवताः ॥ १० ॥

अर्थ-ॐकार प्रथम सूत्रमें दूसरे सूत्रमें अग्निदेवता तीसरे सूत्रमें नाग (तक्षक) चौथे सूत्रमें चन्द्रमा देवता पञ्चम सूत्रमें पितृदेवता छठवें सूत्रमें प्रजापति सतवें सूत्रमें वायुदेवता अठवें सूत्रमें सूर्यदेवता नौवां सूत्रमें सब देवता बसते हैं इतने सूत्रके देवता हैं ॥ ८-१० ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! किस २ वस्तुकी यज्ञोपवीत बनावे और किस विधिसे बनावे सो कृपा करके कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! धर्मशास्त्रमें ऐसा कहाहै यथा प्रमाण-

कार्पासक्षौमगोबालशाणवल्कतृणादिनाम् ॥
सदा सम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥ ११॥
शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहतांगुलिमूलके ॥
आवेष्टय षण्णवत्या तत्त्रिगुणीकृत्य यत्नतः ॥१२॥

अर्थ-कपास अतसी गौके बाल शण वल्कल कुशादितृण इन सबमें जो जिस देशकालमें मिलना सम्भव हो उसीके यज्ञोपवीत ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बनाकर धारण करे यदि सब मिले तो कपासके ब्राह्मण शणके क्षत्रिय गोबालादि उनके वैश्य धारण करे ऐसा मनुजीके सिद्धांत हैं। तिसमें शुचि नाम पवित्र सूत्र याने (पुण्यस्त्रीभिर्विनिर्मितम्) इस वचनानुकूल जिन स्त्रीकी ८ । ९ । १० वर्षकी अवस्थामें विवाह हुआ हो उन स्त्रीकी हाथकी कातीहुई सूत्रको ऐसा न हो कि, बाजारका सूत्र हो अथवा कुमारी कन्याके हाथका हो अथवा शूद्राकी हाथकी कातीहुई सूत्रको लेकर बनावे सो सब श्रेष्ठ है ब्रह्मतेजको नाश करनेवाला है इससे अपनी स्त्रीके हाथकी सूत्र हो उसको पवित्र स्थानमें स्वयं पवित्र होकर बनावे तहां सब अंगुलीके मूल मिलाकर ९६ तार सूत्रको लपेटकर त्रिगुणी करे यत्नसे ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ब्राह्मणको ९६ वार क्षत्रियको ९० वार वैश्यको ८४ वार लपेटना योग्य है ॥ पुनरापि-

अब्लिंगकैस्त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं च तत् ॥
अप्रदक्षिणमावृत्तं सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् ॥ १३ ॥
अधःप्रदक्षिणावृत्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् ॥
त्रिरावेष्टयदृढं बध्वा ब्रह्मविष्णुशिवं नमेत् ॥
यज्ञोपवीतं परममिति मंत्रेण धारयेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—आपोहिष्ठादि तीन मन्त्रोंसे उस त्रिगुणीसूत्रको शुद्ध जलसें धोकर बांई ओरसे ऊपरको ऐंठे पुनः त्रिगुणी करके सावित्री (गायत्री) मंत्रसे दहिनी ओरसे ऐंठे इस प्रकारसे नवौ सूत्रके एक डोरी बनाके दृढ ग्रंथि देवे चाहे ब्रह्मग्रंथि हो चाहै विष्णु ग्रंथि हो चाहै शिवग्रंथि हो भाव सामवेदीको विष्णुग्रंथि चाहिये ऋग्वेदीको ब्रह्मग्रंथि चाहिये यजुर्वेदीको शिवग्रंथि चाहिये पुनः ब्राह्मणको विष्णुग्रंथि चाहिये क्षत्रियकी ब्रह्मग्रंथि चाहिये वैश्यको शिवग्रंथि चाहिये हे शिष्य! ग्रंथि देकर (यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्) इस मन्त्रसे मंत्रितकर धारण करे ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! आपोहिष्ठादि तीन मंत्र कौन हैं जिससे त्रिगुणी करे सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! वह मन्त्र ए हैं ।

ॐआपोहिष्ठा मयोभुवस्तानाऊर्ज्जे दधातन ॥
महेरणाय चक्षसे १ ॥ १५ ॥
ॐ योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेहनः ॥
उशतीरिवमातरः २ ॥ १६ ॥
ॐतस्माअरंगमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ ॥
आपोजनयथाचनः ३ ॥ १७ ॥

अर्थ—हे शिष्य ! इन तीनों मंत्रसे सूत्रको त्रिगुणी करे ॥ १५–१७ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! सूत्रको त्रिगुणी करके फिर कौन मंत्रसें

त्रिगुणी करे सो कृपा करके कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! फिर त्रिगुणी इस मंत्रसे करे ।

(यथामंत्र)

ॐइदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥
समूढमस्यपाꣳसुरे स्वाहा मेधातिथिर्ऋषिर्विष्णु
र्देवता गायत्री छन्दः ॥ १८ ॥

हे शिष्य ! इस त्रिविक्रमावतारके मंत्रसे त्रिगुणी करके ग्रंथि देवे ॥ ॥ १८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! ग्रंथि कौन मंत्रसे देवे सो कृपाकरके कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! तीनों मंत्रसे देवे यथा ।

(मंत्र)

ॐविश्वेदेवास आगत शृणुतामइमꣳहवम् ॥
एदंबर्हिर्निषीदतइति ब्रह्मा ॥ १ ॥ १९ ॥
ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥
समूढमस्यपाꣳसुरे स्वाहा इति विष्णुः॥२॥२०॥
ॐ त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनम् उर्वा-
रुकमिव बंधनात् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥
इति शिवमंत्रः ॥ २१ ॥

(श्लोकाः)

सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम् ॥
सावित्र्या दशकृत्वोद्भिर्मंत्रिताभिस्तदुक्षयेत् ॥२२॥
विच्छिन्नं वाप्यधोयातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥
स्तनादूर्ध्वमधोनाभेर्न धार्यं तत्कथंचन ॥ २३ ॥

अर्थ—यदि सूत्रमें किसीकी बाल लगे हों तो उस बालको निकाल कर गायत्री मंत्रसे जलको पढकर दश वार फिर उसको सिंचन कर यज्ञोपवीतको धारण करे अन्यथा नहीं ॥ टूटा हो अथवा नाभीसे नीचे भागमें गिरगया हो तो उस यज्ञोपवीतको छोड़कर नवीन सूत्र धारण करे स्तनसे ऊपर नाभीसे नीचे यज्ञोपवीतको कभी भूलकरभी न धारण करे ॥ १९–२३ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! कितनेक मूर्ख तो कटि (कम्मर) में यज्ञोपवीतको कभी २ धारण करलेते हैं उनके लिये क्या दोष है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! कटिमें यज्ञोपवीत केवल (कशरती) लोग रखते हैं सो मूर्खलोग हैं और भी बहुत मूर्ख पशुलोग रखते हैं कटिमें (जनेऊ) रखनेका बडा भारी दोष है यथा प्रमाण—

कर्णे पुष्पं कटौ सूत्रं वेणीं शिरसि धारयेत् ॥
तावद्भवति चाण्डालो यावद्गंगां न पश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—कानमें पुष्प कटिमें यज्ञोपवीतको शिरमें वेणीको धारण करे तवतक मनुष्य चाण्डाल है जबतक कि गंगाजीके दर्शन करता नहीं है ॥ इससे कमरमें यज्ञोपवीत भूलसे न धारण करे ॥ २४ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! किस युगमें कौन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! छन्दोग परिशिष्ट गृह्यसूत्रके हरिहरभाष्यमें ऐसा कहा है यथा—

कृते पद्ममयं सूत्रं त्रेतायां कनकोद्भवम् ॥
द्वापरे राजतं प्रोक्तं कलौ कार्पाससंभवम् ॥ २५ ॥

अर्थ—सत्ययुगमें कमलनालके सूत्रके यज्ञोपवीत वनाते हैं त्रेतामें स्वर्णके सूत्र द्वापरमें राजत (चाँदी) के सूत्र हैं और कलियुगमें कपास (सूत) के यज्ञोपवीत हैं ॥ २५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! कण्ठसे यदि यज्ञोपवीत गिरपरे तो क्या करे (उत्तर) हे शिष्य ! कण्ठसे यज्ञोपवीत गिरपरे तो पुनः संस्कार करना चाहिये यथा—

सूतके मृतके चैव गते मासचतुष्टये ॥
नवयज्ञोपवीतानि धृत्वा जीर्णानि संत्यजेत् ॥
कठाः काणवाश्च चरका विप्रा वाजसनेयकाः॥२६॥
बह्वृचाः सामगाश्चैव ये चान्ये यजुःशाखिनः ॥
कण्ठादुत्तीर्य सूत्रं तु पुनः संस्कारमर्हति ॥ २७ ॥

अर्थ-सूतक (छूतक) में मृत्युमें और चारमहीनाके वाद नवीन यज्ञोपवीत धारण करे पुरानाको छोड़देवे ॥ कठ शाखावाले कण्व शाखावाले चरकशाखावाले वाजसनेयीशाखावाले बह्वृच (ऋग्वेदी) सामवेदी और यजुर्वेदी शाखावाले ये सब हैं वह कण्ठसे यज्ञोपवीतको उतारकर भाव कण्ठसे निकलजावे तो पुनः संस्कारके योग्य होजातेहैं इससे यज्ञोपवीत न त्यागे ॥ २६ ॥ २७ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! विना यज्ञोपवीतके जल पीवे शौच करे तो क्या दोष है ? (उत्तर) हे शिष्य ! शास्त्रमें ऐसा कहाहै यथा प्रमाण-

विना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिबते द्विजः ॥
उपवासेन चैकेन पंचगव्येन शुध्यति ॥ २८ ॥
विना यज्ञोपवीतेन विण्मूत्रोत्सर्गकृद्यदि ॥
उपवासद्वयं कृत्वा दानैर्होमैस्तु शुध्यति ॥ २९ ॥

अर्थ-विना यज्ञोपवीतके जो ब्राह्मण जलको पीते हैं वह एक उपवास करके पंचगव्यसे शुद्ध होतेहैं । विना यज्ञोपवीतके यदि मलमूत्रको त्याग करतेहैं वह दो उपवास करके दान होमसे शुद्ध होतेहैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! जीर्ण (पुराना) यज्ञोपवीत किस प्रकारसे कौन मंत्र पढकर त्यागे सो कहिये ।(उत्तर) हे शिष्य ! इस प्रकारसे त्यागन करना चाहिये यथा प्रमाण-

उपाकर्मणि चोत्सर्गे गते मासचतुष्टये ॥
नवयज्ञोपवीतानि धृत्वा पूर्वाणि संत्यजेत् ॥
पूर्वयज्ञोपवीतानि शिरोमार्गेण संत्यजेत्॥३०॥

॥ त्यागमंत्रः ॥

एतावद्दिनपर्यंतं ब्रह्मत्वं धारितं मया ॥
जीर्णत्वात्त्वं परित्यक्तं गच्छ सूत्र यथासुखम् ॥३१॥

अर्थ-क्षौर करानेपर मलमूत्रके त्यागनेपर चार मास बीतेपर नवीन यज्ञोपवीत धारण करके पूर्ववाला त्याग देवे। पूर्ववाला यज्ञोपवीत शिरके मार्गसे निकालदेवे और कहे कि, ब्रह्मत्वके देनेवाला इतने दिन पर्यंत मैंने आपको धारण किया. अब पुराना होनेसे आपको छोडतेहैं इससे हे सूत्र ! सुखपूर्वक जाउ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! यज्ञोपवीत धारण करनेके मंत्र कौन हैं सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य! धारण करनेके मंत्र ए हैं-(मंत्र)

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ३२

हे शिष्य ! इस मंत्रसे धारण करे ॥ ३२ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! यज्ञोपवीतके मन्त्रमें तो शुभ्र (श्वेत) यज्ञोपवीत लिखा है फिर लाल वा पीत यज्ञोपवीत क्यों लोग धारण करतेहैं सो कहिये। (उत्तर) हे शिष्य। रक्त वा पीत यज्ञोपवीत किसीदेशमें धारण करते नहीं है केवल मिथिलाप्रान्त भागलपुर मुंगेर जिलामेंही यह अंधकी परंपरा मूर्खतासे चलरहीहै सो तमोगुणी आचरण है। हे शिष्य ! हम सर्वत्र सब देशोंमें भ्रमण किया है परन्तु जैसा मूर्खता राक्षसी कर्म मैंने मिथिलाप्रांतमें देखा है उस प्रकारके शास्त्रविरुद्ध कर्म हम कहीं

किसी देशमें नहीं देखा है (प्रश्न) हे स्वामीजी ! मिथिलाप्रांत तथा भागलपुर मुंगेर जिलामें शास्त्रविरुद्ध कर्म क्या है सो कहिये ।(उत्तर) हे शिष्य ! इस प्रांतमें चारों वर्ण उष्ण चावल खातेहैं सो महानीच कर्म है । जिसने उष्ण अन्न खाया वो जानो सब जातियोंकी छूवा खालिया इसमें सन्देह नहीं है । एक दूसरा सब लोग मछरी मांस खातेहैं सोभी महानीच राक्षसी कर्म है तीसरा सब लोग देवीदुर्गाके सामने बकडा भैंसा काटतेहैं, तिसमें बकडा चारों वर्ण खायजाताहै और भैंसा चमारको देतेहैं वो खाताहै अगर जो पूछो कि, तुम लोग मांस क्यों खातेहो तो कहेगा भगवतीका प्रसाद है इसमें क्या दोष है । (न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने) इत्यादि दलील करेगा अगर जो फिर पूछो कि, देवीका प्रसाद भैंसा क्यों नहीं खातेहो जो चमारको देतेहो क्या देवी चमारिन हैं जो भैंसा खाती हैं तुम नहीं खातेहो वाह २ धन्य है ! यह बात सुनकर विधि निषेध देखावेंगे भला तुम सेवक कैसे हो जो अपने इष्टके प्रसादभी नहीं खाते केवल सब पाखण्ड है । चौथा चारों वर्ण मिट्टीके बर्तनमें पाक बनाते हैं एक बार बनाना तो उत्तम है सो नहीं महीना दो दो महीना एकही बर्तनमें बनावेंगे और मृत्तिकाहीके पात्रसे जल भरते हैं एभी कर्म भ्रष्ट है । पांचमां चारों वर्णके पुरुष तो स्नान करते हैं स्त्री रोज नहीं नहाती है १५ । २० । २५ । ३० रोजमें स्नान करती है और रजस्वलास्त्रीसे छूतके विचार कुछभी नहीं करते हैं ऐसे धर्मात्मा लोग हैं कहांतक कहें कि कपडातक भी नहीं धोती है एकही कपडासे सब काम करती है । छठवां विलक्षणता ए है कि, चारों वर्ण धोती आदिक वस्त्रको रंगमें रंगाके धारण करते हैं श्वेत वस्त्रको अशुभ जानते हैं केवल मरणेपर शुक्ल वस्त्र तथा यज्ञोपवीत धारण करते हैं बाकी सब दिन लालही वस्त्र लालही जनेऊ धारण करते हैं सो विरुद्ध कर्म है यथा शांडिल्यसंहितायां भक्तिखण्डे-

नाधिरोहेत पर्यंकं रक्तवासो न धारयेत् ॥
न रक्तचन्दनं गात्रे गृह्णीयाद्रक्तपुष्पकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ–पलंगपर न चढे लाल वस्त्र न धारण करे लालचन्दन न धारण करे न लाल पुष्प धारण करे। इत्यादि कहाहै ॥ ३३ ॥ इससे लाल वस्त्रादि न धारण करना चाहिये। ७ वां विकर्म ए है कि सब लोग खटियापर मरते हैं और खटियाही पर मुर्दा उठाते हैं सोभी महा नीच कर्म है इससे मरनेकालमें खाटसे नीचे उतार देना चाहिये अन्तरिक्ष मृत्यु ठीक नहीं है यथा महाभारते–

उच्छिष्टस्य विशेषेण भोजनं च करोति यः ॥
अंतरिक्षे मृतो यस्तु स प्रेतो जायते नरः ॥ ३४ ॥

अर्थ–विशेष करके जूंठा खाते हैं जो और अन्तरिक्ष नाम अधर जो मरते हैं भाव कोठापर छत्तपर चारपाई (खाटपर) जो मरते हैं वह प्रेत होते हैं ॥ ३४ ॥ इत्यादि बहुत प्रमाण हैं। हे शिष्य ! विशेष देखना हो तो निर्णयसिंधु ग्रंथ देखो। इससे पूर्वदेशमें सब खाटपर मरते हैं ताते गति नहीं होती है इसीसे उधर भूत प्रेत बहुत हैं यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। ८ वां नीचकर्म ए हैं कि सब लोग भूत प्रेतके पूजा करते हैं और वाममार्गके विशेष प्रचार हैं इससे सब लोगोंका कर्म राक्षसी होरहा है और तामसी ग्रंथोंका विशेष प्रचार होरहा है इसीसे लाल जनेऊ धारण करते हैं। (प्रश्न) हे स्वामीजी ! प्रथम कौन मंत्रसे यज्ञोपवीत अभिमंत्रित करे सो कहिये। (उत्तर) हे शिष्य ! प्रथम गायत्रीसे जल लेकर तीन बार अभिमंत्रित कर पश्चात् इन मन्त्रसे मंत्रित करे यथा (यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं) इसके बाद इस मन्त्रसे भगवत् अर्पण करके धारण करे यथा–

ब्रह्मणा निर्मितं सूत्रं विष्णुग्रन्थिसमन्वितम् ॥
इदं यज्ञोपवीतं च गृह्यतां तु जनार्दन ॥ ३५ ॥

अर्थ–हे शिष्य ! सामवेदीको तीन प्रवर चाहिये ऋग्वेदीको चार प्रवर होना योग्य है यजुर्वेदीको पांच प्रवर होना चाहिये। (प्रश्न) हे स्वामीजी ! किसको कितना यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये सो कृपा करके कहिये। (उत्तर) हे शिष्य ! शास्त्रमें ऐसा कहाहै यथा–

ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा ॥
तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदिष्यते ॥ ३६ ॥
ब्रह्मसूत्रेऽपसव्येंसे स्थिते यज्ञोपवीतिता ॥
प्राचीनावीतिता सव्ये कण्ठस्थे तु निवीतिता ॥३७॥

अर्थ–ब्रह्मचारीको एक चाहिये (स्नातक) गृहस्थको दो होना चाहिये अथवा बहुतही होना चाहिये अर्थात् १८ अष्टादशतक होना चाहिये यदि शरीरपर अंगोछा न हो तो तीनही होना चाहिये वस्त्राभावमें भी तीनही धारण करना चाहिये। बायें कन्धेपर धारण करें तो पुरुष उपवीती कहाते हैं ऐसा धारण करके देवकर्म करना चाहियें और दहिने कन्धेपर धारण करें तो प्राचीनावीती कहाते हैं ऐसा धारण करके पितृदेव (श्राद्धकर्म) करे और कण्ठस्थ भाव मालाकार धारण करनेसे निवीती कहाता हैं ऐसा धारण करके ऋषिकर्म करै, ऐसेंही कूर्मपुराणके ११ अध्यायमें कहा है यथा–

उद्धृत्य दक्षिणं बाहुं सव्ये बाहौ समर्पितम् ॥
उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठसज्जने ॥ ३८ ॥
सव्यं बाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजः ॥
प्राचीनावीतमित्युक्तं पैत्रे कर्मणि योजयेत् ॥ ३९॥
अग्न्यगारे गवां गोष्ठे होमे जाप्ये तथैव च ॥
स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च सन्निधौ४०॥
उपासने गुरूणां च संध्ययोः साधुसंगमे ॥
उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः ॥ ४१ ॥

अर्थ–दहिना भुजा निकाल बायें भुजाको, आर्पितकर बायें कंधेपर धारण करे तो नित्योपवीती कहाता है कंठमें मालाकार धारण करनेसे साधुलोग निवीती कहाते हैं सो नारदपंचरात्रमें कहा है आगे कहेंगे और बायें भुजाको निकालकर दहिने कंधेपर जो धारण करते हैं वह

प्राचीनावीती कहाते हैं ऐसा धारण करके श्राद्धकर्म करे ॥ अग्निहोत्रमें गौशालामें हवन करनेमें मंत्रजापमें वेदाध्ययनमें भोजनकालमें ब्राह्मणोंके समीपमें गुरुस्वामीके समीप सेवामें प्रातः सायंकालके संध्यामें साधुसत्संगमें नित्य उपवीती अर्थात् जैसा है उसीप्रकारसे रखना यह सनातन रीति है ॥ ३८–४१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! नारदपंचरात्रमें कैसा कहा है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य ! नारद पंचरात्रमें मालाकार यज्ञोपवीत केवल विरक्त वैष्णवोंकेही लिये कहा है यथा—

विरक्ता भगवद्भक्तास्त्यक्तवर्णाश्रमा मुने ॥
मालेव यज्ञसूत्रं वै धारयेयुर्मनीषिणः ॥ ४२ ॥
निष्कामो निर्ममः शांतो वीतरागो जितेन्द्रियः ॥
यज्ञसूत्रं मुनिश्रेष्ठ मालाकारं च कारयेत् ॥ ४३ ॥
भगवद्भक्तियुक्ता ये ऋषिधर्मरतात्मनाम् ॥
ब्रह्मसूत्रं सदा धार्यं मालेव मुनिपुंगव ॥ ४४ ॥

अर्थ—भगवान् बोले नारदजीसे कि हे मुने ! वर्णाश्रमसे रहित विरक्त जे भगवद्भक्त हैं वह निश्चयपूर्वक मालाकार यज्ञोपवीतको धारण करें ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जो निष्कामी हैं अहंकारसे रहित शांत हैं विषयसे विमुख हैं जितेन्द्रिय हैं वह मालाकार यज्ञोपवीतको धारण करें ॥ हे मुनिपुंगव ! जो जन भगवत्भक्ति करके युक्त हैं और ऋषिधर्ममें तत्पर हैं वह मालाकार यज्ञोपवीतको सर्वदा धारण करे ॥ ४२–४४ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! संन्यासीको यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये कि नहीं (उत्तर) हे शिष्य ! हमारे वैष्णवसंप्रदायका सिद्धांत है कि संन्यासी होकर जो शिखासूत्रको नहीं धारण करते हैं वह पतित होजाते हैं ऐसा हारीतस्मृतिके ५ अध्यायमें कहा है—

शिखायज्ञोपवीतादि ब्रह्मकर्म यतिस्त्यजेत् ॥
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वानोऽभिजायते ४५॥

स्वरूपेणैव धर्मस्य त्यागो हानिर्भवेद्ध्रुवम् ॥
कर्मणां फलसंत्यागः संन्यासः स उदाहृतः ॥४६॥
अनाश्रितः कर्मफलं कृत्यं कर्म समाचरेत् ॥
स संन्यासी च योगी च स मुनिःसात्त्विकःस्मृतः४७
हित्वा यज्ञोपवीतं तु हित्वा चक्रस्य धारणम् ॥
हित्वा शिखोर्ध्वपुण्ड्रे च विप्रत्वाद्भ्रश्यते ध्रुवम्४८॥

अर्थ—शिखासूत्रादि ब्राह्मणकर्म जो संन्यासी त्यागदेते हैं वह जीतेही चाण्डालसम हैं मरे पीछे श्वान (कुत्ता) होते हैं ॥ धर्मका स्वरूप त्यागनेसे अवश्यही हानि होती है इससे कर्मका फल त्यागे वही संन्यासी है कुछ शिखा सूत्रके त्यागनेसे संन्यासी नहीं होताहै ॥ अनाश्रित कर्मफलको भोगते कर्म करता है वही संन्यासी है वही योगी है वही मननशील मुनि सात्त्विक कहाहै भाव शिखासूत्रके त्यागनेवाले तामसी हैं और जिस श्रुतिस्मृतिमें शिखासूत्रका त्याग लिखा है वह तामसी सिद्धान्त है तामसी मत है । यज्ञोपवीतको छोडकर शंख चक्र छोड शिखा ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलकको छोडकर ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे अवश्यकर पतित होजाते हैं इसलिये वैष्णवधर्म कभी न त्यागे ॥ ४५–४८ ॥ यथा—

अनायुधासो असुरा न देवा इति वै श्रुतिः ॥ ४९॥
इहामुत्र च तेषां वा आसुरो भाव उच्यते ॥
आसुरो विद्यते भावो यावदेषां द्विजन्मनाम् ॥५०॥
न तावदधिकारोस्ति समाराधनकर्मणि ॥
नाधिकारोऽर्चने यावन्मोक्षाशा विद्यते कुतः ॥
इति ब्रह्मसंहितायाम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–जिसको शंख चक्र नहीं है भाव जो वैष्णवधर्मसे रहित है वही असुर नाम दैत्य है इस लोकमें परलोकमें असुर कहेजातेहैं। जबतक असुरभाव है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको तबतक हमारे पूजनादि कर्मके अधिकारी नहीं है और जबतक हमारे पूजन स्मरणके जीवको अधिकार नहीं है तबतक मोक्ष होनेकी आशा कहाँ है 'बिनु हरिभजन न भव तरहिं, यह सिद्धान्त अपेल।' इत्यादि कहाहै ॥ ४९–५१ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! कोई २ विद्वान्लोग कहतेहैं कि, हारीतस्मृति कल्पित ग्रंथ है किसी वैष्णवका बनायाहै ऐसा कहतेहैं (उत्तर) हे शिष्य ! यह कलियुगके प्रभाव हैं यथा 'कलिमलग्रासे धर्म सब, लुप्त भए सदग्रंथ। दंभिन निजमति कल्पिकरि, प्रगट किये बहु पंथ।' यथा–

कलिप्रभावतो नष्टाः सद्ग्रंथानां कथाः शुभाः ॥
पाखण्डैर्निर्मितं नानामतं श्रीनामवर्जितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ–ब्रह्मसंहितामें शिवजीके वचन हैं ब्रह्माजीसे कि, कलिप्रभावसे सदग्रंथ नाम वैष्णवग्रंथ कथासिद्धान्त सब नष्ट होजायँगे और पाखण्डीके बनाये ग्रंथ नानामतके श्रीरामनामसे वर्जित प्रचार होवेंगे भाव जिस पुस्तकमें रामनाम नहीं है वही पाषण्डी ग्रंथ जानना चाहिये हे शिष्य ! कहनेका तात्पर्य यह है कि, जहां जिस ग्रंथमें वैष्णवधर्मका सिद्धान्त वर्णन है सो तो कल्पित है और जहाँ जिस ग्रंथमें शैवधर्मका वर्णन है शाक्त धर्मका वर्णन है गाणपत्य धर्मका वर्णन है और भी अनेक मत हैं सो सब वैदिक धर्म हैं और ऋषिप्रणीत हैं हे शिष्य! कलियुगमें ऋषिप्रोक्त ग्रंथको पाषण्डीलोग कल्पित कहेंगे और कल्पित ग्रन्थोंको ऋषिप्रोक्त कहेंगे एही तो कलियुगकी विचित्रिता है हे शिष्य ! वैष्णवमतके विरोधी जो हैं वही राक्षस मतवाले वैष्णवग्रंथको कल्पित कहतेहैं दूसरा नहीं यह सिद्धान्त निश्चय है और संन्यासीके लिये शिखा सूत्र तो आर्षग्रंथ वाल्मीकीयरामायणके आरण्यकाण्डमेंभी प्रसिद्ध है ॥ ५२ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! संन्यासीको

कितना यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य ! उसीही हारीतस्मृतिके ५ अध्यायमें ऐसा कहाहै यथा—

एकैकमुपवीतं तु यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥
गृहिणां च वनस्थानामुपवीतद्वयं स्मृतम् ॥ ५३ ॥
सोत्तरीयं तृतीयं वा बिभृयाच्छुभ्रतंतुना ॥
आश्रमाणां चतुर्णां तु यज्ञसूत्रं विधीयते ॥ ५४ ॥
त्रयमूर्ध्वंद्वयं तंतुतंतुत्रयमनुवृतम् ॥
त्रिविच्चग्रंथिनैकेन उपवीतमिहोच्यते ॥ ५५ ॥
अर्ककार्पासकौशेयक्षौमशाणमयानि च ॥
तंतूनि चोपवीतानां योज्यानि मुनिसत्तम ॥
सर्वेषामप्यलाभे तु कुर्यात्कुशमयं द्विजः ॥ ५६ ॥

अर्थ—एक यज्ञोपवीत संन्यासियोंको और ब्रह्मचारियोंको चाहिये दो यज्ञोपवीत गृहस्थोंको और बानप्रस्थोंको कहाहै। अंगोछाके लिये तीन, भाव अंगोछा न हो तो तीन चाहिये और श्वेत हो लाल पीत न हो दोष है इसी प्रकारसे चारों आश्रमको यज्ञोपवीत कहाहै। त्रिगुणीकरके ऊपर ऐंठे फिर त्रिगुणीकरके नीचे अैंठे पुनः त्रिगुणीकरके बीचमें एकग्रंथि देवे उसको यज्ञोपवीत कहते हैं। आक—कपास—अतसी—ऊन शण इन सबके सूत्र बनाकर यज्ञोपवीतमें लगावे यदि ये सब न मिलें तो कुशके ही यज्ञोपवीत ब्राह्मणादिको करना चाहिये ॥ ५३—५६ ॥ हे शिष्य ! भृगुजीने भी ऐसेही कहा है—

यज्ञसूत्रं वटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते ॥
एकमेव यतीनां स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥५७॥
पंचैव पुत्रकामस्तु धर्मकामस्तथैवव च ॥

आयुष्कामी सदा कुर्य्याद्बहुयज्ञोपवीतकम् ॥ ५८॥
सूतके मृतके क्षौरे चाण्डालस्पर्शने तथा ॥
यज्ञसूत्रं नवीनं तु धारयेन्मनुरब्रवीत् ॥ ५९ ॥

अर्थ–ब्रह्मचारीको एक चाहिये और गृहस्थ वानप्रस्थको दो चाहिये एक संन्यासीको चाहिये ऐसा सनातनधर्मकी व्यवस्था है । पुत्रइच्छा वालेको तथा धर्मके कामनावालेको ५ पांच यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये सो दक्षिण देशमें प्रसिद्ध है और आयुष्कामी जो है भाव जिनको आयु बढनेकी चाहना है वह बहुत यज्ञोपवीत धारण करे भाव १८ अष्टादश तक धारण करनेको लिखा है । सूतकमें मृत्युमें क्षौर (हजामत करानेपर) चाण्डालादिके स्पर्श होनेपर नवीन यज्ञोपवीत धारण करे ऐसा मनुजीका कहना है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ पुनः प्रमाण श्रवण करो यथा–

श्वानरासभसंस्पर्शे म्लेच्छादीनां तथैव च ॥
मेहने वाथवाऽज्ञानान्नाविकं वा स्पृशेद्यदि ॥ ६० ॥
तत्क्षणादेव नश्यंति कर्मणा द्विजसत्तमाः ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धार्य्यं स्नात्वोपवीतकम् ॥ ६१ ॥
यो न धारयते विप्रो ब्रह्मसूत्रं विधानतः ॥
तपोज्ञानं भवेत्तस्य सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥ ६२॥

अर्थ–श्वान रासभ (गदहा) के स्पर्श होनेमें तथा म्लेच्छ (यवन) के स्पर्श होनेमें अथवा मल मूत्र त्यागने कालमें अज्ञानसे कानपर न चढाया हो और नाविक (नाई) के छूनेपर उसी वक्तमें ब्राह्मणोंके सब कर्म नष्ट होजाते हैं इसलिये सर्व यत्नपूर्वक स्नान करके नवीन यज्ञोपवीतको धारण करे । जो ब्राह्मण विधिसे यज्ञोपवीतको धारण नहीं करते हैं उनके तप ज्ञान कर्म सबही निष्फल होजाते हैं ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ पुनरपि प्रमाणम्–

पतितं त्रुटितं वापि ब्रह्मसूत्रं यदा भवेत् ॥
नूतनं धारयेद्विप्रः स्नानसंकल्पपूर्वकम् ॥ ६३ ॥
परित्यजंति ये विप्रा मोहात्तर्कावलंबिनः ॥
स्वर्गापवर्गमार्गाभ्यां प्रच्युतास्ते न संशयः ॥६४॥
ब्रह्मसूत्रपरित्यागाद्ब्रह्मचारी गृही वनी ॥
परिव्राड् वापि पतति तस्मात्तन्न परित्यजेत् ॥६५॥

अर्थ-यज्ञोपवीत जब गिरजावे अथवा टूटजावे तो ब्राह्मण स्नान करके संकल्पपूर्वक याने ॐ अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वते मन्वन्तरे अष्टाविंशतिमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जंबूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते अमुकक्षेत्रे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकनाम्नो मम श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थं यज्ञोपवीतधारणमहं करिष्ये। इस संकलपको पढकर नवीन यज्ञोपवीत धारण करे । जो ब्राह्मण मोहसे अथवा तर्कसे अर्थात् यज्ञोपवीतके धारण करनेसे क्या होता है कर्मधर्मसे क्या होता है तीर्थ व्रतमें क्या धरा है मूर्तिपूजनसे क्या होता है, सब एकही ब्रह्म है ऐसे ऐसे सहस्रों तर्क वितर्क करके जो मूर्ख यज्ञोपवीतको त्याग देते हैं और चोटिया भी कटा देते हैं वह मूर्ख स्वर्ग अपवर्ग (मोक्ष) मार्गसे गिरपरते हैं इसमें संशय नहीं है । यज्ञोपवीतको त्याग देनेसे ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ तथा संन्यासी भी पतित होजाते हैं उससे यज्ञोपवीतको कभी भूलसे नहीं त्यागे ॥ ६३-६५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! आजकालके संन्यासी लोग शिखा सूत्रको नहीं रखते हैं सो क्यों ? (उत्तर) हे शिष्य ! वैष्णव संप्रदायके संन्यासी सब धारण करते हैं, केवल शंकराचार्यके मतवाले संन्यासी लोग नहीं रखते हैं सो तामसी मतवाले, पाषण्डी लोग हैं, हे शिष्य ! पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है कि विष्णुभगवानकी आज्ञासे शिवजी शंकराचार्यके अवतार लेकर पाषण्डमत चलावेंगे वही ए सब हैं स्कंदपुराणोक्त वाल्मीकीय रामायणके माहात्म्यमें लिखा है-

यदा द्विजा भविष्यंति तदा वृद्धिं गतः कलिः ॥
विप्रवंशोद्भवः श्रेष्ठ उपवीतं शिखां त्यजेत् ॥ ६६॥
कथं तन्निष्कृतिं याति वद सूत महामते ॥
राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायंते ब्रह्मयोनिषु ॥ ६७॥
परस्परं विरुध्यंति भगवद्धर्मवंचकाः ॥
द्विजानुष्ठानरहिता भगवद्धर्मवर्जिताः ॥ ६८ ॥
कलौ विप्रा भविष्यंति कंचुकोष्णीषधारिणः ॥
घोरे कलियुगे ब्रह्मजनानां पापकर्मणाम् ॥ ६९ ॥

अर्थ-जब सब ब्राह्मण होवेंगे तब कलियुग वृद्धिको प्राप्त होवेंगे काहेसे कि ब्राह्मणकुलमें बडे २ श्रेष्ठ विद्वान् होकर शिखासूत्रको त्यागदेंगे । हे महामते सूतजी ! उसके उद्धार कैसे होवेंगे सो कहिये कलियुगमें ब्राह्मणके कुलमें राक्षस लोग जन्म लेंगे । और परस्पर विरोध करेंगे तथा भगवद्धर्म जो है वैष्णवधर्म कण्ठी माला तिलक शंख चक्रादि उसके निन्दा करनेवाले और छलनेवाले होवेंगे । सब ब्राह्मण अनुष्ठानसे रहित होजावेंगे और भगवद्धर्म अर्थात् वैष्णवधर्मसे रहित होजावेंगे । कलियुगमें सब ब्राह्मण कंचुक (अंगरखा) उष्णीष (पगडी) भाव अंगा टोपी कोट पतलून कुर्ता बनीआइनके (गंजिफरास) बूट चुरूट बीड़ी गांजा भांग तमाखू आदिको धारण करनेवाले होजावेंगे । घोर कलियुगमें सब ब्राह्मण पापी होजावेंगे । हे शिष्य ! जैसा लिखाहै तैसही वर्तमानकालमें सब होरहाहै इससे मायावादी लोग शिखासूत्रको नहीं रखते हैं ॥ ६६-६९ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अंगरखा कुर्ता पयजामा आदिक नहीं धारण करे अगर करे तो दोष क्या है सो कहिये । (उत्तर) हे शिष्य ! आगमतंत्रमें कहाहै कि-

ऊर्ध्ववस्त्रादधोवस्त्रं बस्त्रं च गलबंधनम् ॥
यदि मोहात्कृतो विप्रः सद्यश्चान्द्रायणं चरेत्॥७०॥

अर्थ–ऊर्ध्ववस्त्र अर्थात् कुर्ता कमीच आदि जो शिरसे पहिनाजावे अधोवस्त्र जो नीचे पैरसे पहिनाजावे जैसे कि पाजामा मौजा आदिक गलबंधन गलेबंध जो गलेमें लपेटे दाढीमें लपेटे ए सब यवनीवस्त्र हैं जो ब्राह्मण लोग मूर्खतासे धारण करें तो शीघ्र चान्द्रायणव्रत करे तो शुद्ध हो ॥ ७० ॥ हे शिष्य ! और भी विशेष देखना हो तो वेदार्थप्रकाश रामायण देखो अब फिर यज्ञोपवीतके प्रमाण सुनो. पाराशरः–

दशाष्टौ च गृहस्थस्य चत्वारि वनवासिनाम् ॥
एकमेवोपवीतं स्याद्यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ७१ ॥
यज्ञसूत्रं द्वयं धार्यं ब्राह्मणेन विधानतः ॥
तृतीयं तूत्तरीयार्थं वस्त्राभावे चतुर्थकम् ॥ ७२ ॥
कण्ठादिनाभिपर्यंतं यज्ञसूत्रं पवित्रकम् ॥
न्यूने रोगप्रवृत्तिः स्यादधिके धर्मनाशनम् ॥ ७३ ॥
सूतके मृतके क्षौरे चाण्डालस्पर्शने तथा ॥
यज्ञसूत्रनवीनस्य धारणं मनुरब्रवीत् ॥ ७४ ॥

अर्थ–गृहस्थको अष्टादश १८ पर्यंत यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और वानप्रस्थको चार यज्ञोपवीत चाहिये एक उपवीत ब्रह्मचारीको और संन्यासीको होना चाहिये । दो यज्ञोपवीतको ब्राह्मण विधिसे धारण–करे भाव दोसे कम गृहस्थको न होना चाहिये । अंगोछाके लिये तीसरा धारण करे वस्त्रके अभावमें चौथा धारण करे। कंठसे नाभिपर्यंत यज्ञोपवीत पवित्र है इस प्रमाणसे कम धारण करे तो रोग हो विशेष धारण करे तो धर्मनाश हो, इसमें कंठसे नाभितक धारण करना चाहिये । सूतकमें मृत्युमें क्षौरमें चाण्डालके स्पर्शमें नवीन यज्ञसूत्रको धारण करे ऐसा मनुजीके वचन हैं ॥ १७१–१७४॥ हे शिष्य ! ऐसाही स्मृतिरत्नाकरमें भी कहाहै यथा–

नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधस्ताद्धर्मनाशनम् ॥
तस्मान्नाभिसमं धार्यमिति वेदविदो विदुः ॥ ७५ ॥

तन्तुत्रयमूर्ध्वगतं तन्तुत्रयमधःस्थितम् ॥
त्रिविच्चग्रंथिनैकेन उपवीतमिहोच्यते ॥ ७६ ॥

अर्थ-नाभिके ऊपर धारण करे तो आयु नष्ट हो, नाभिसे नीचे धारण करे तो धर्मनाश हो; उससे नाभिके बराबर धारण करना ऐसा वेदके जाननेवालोंने कहाहै ॥ तीन तंतु (तागा) करके बायें ओरसे ऊपरको ऐंठे फिर तिगुणी करके दहिनी ओरसे नीचेको ऐंठे तब तीन गुण करके मध्यमें एक ग्रंथि देवे इसको यज्ञोपवीत कहतेहैं ॥ हे शिष्य! इसी प्रकारसे बहुत ही प्रमाण हैं कहांतक लिखें इससे चारौ आश्रमको यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये ॥ १७५-१७६ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको कितनी अवस्थामें यज्ञोपवीत होना चाहिये (उत्तर) हे शिष्य! शास्त्रके सिद्धांतसे तो उत्तम समय ब्राह्मणको ५ वर्षमें क्षत्रियको ६ वर्षमें वैश्यको ८ वर्षमें होना चाहिये मध्यम काल ब्राह्मणको ८ वर्षमें क्षत्रियको ११ वर्षमें वैश्यको १२ वर्षमें होना चाहिये नीच याने तीसरा समय ब्राह्मणको १६ वर्षमें क्षत्रियको २२ वर्षमें वैश्यको २४ वर्षमें यज्ञोपवीत होना चाहिये इसके ऊपर पतित होजातेहैं, पीछे शास्त्रके आज्ञानुकूल प्रायश्चित्त कर तब यज्ञोपवीतके योग्य होताहै नहीं तो नहीं ॥

इति श्रीमदयोध्यावासिना वैष्णवसाधुश्रीसरयूदासेन विरचिते श्रीवैष्णवकुलभूषणसारसंग्रहे गुरुशिष्यसंवादे भाषाटीकायां यज्ञोपवीत निर्माण धारणविधिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(प्रश्न) हे स्वामीजी! अब आप कृपा करके चारौ युगके धर्म भिन्न २ करके कहिये मेरेको सुननेकी बहुत इच्छा है (उत्तर) हे शिष्य! चारौ युगके धर्म पाराशरस्मृतिमें पाराशरजीने व्यासादिकऋषियोंसे कहाहै यथा प्रमाण ॥

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि शृण्वंतु मुनयस्तथा ॥
कल्पेकल्पे क्षयाः सत्याः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१॥

श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा ॥
नकश्चिद्वेदकर्त्ता च वेदस्मर्ता चतुर्मुखः ॥ २ ॥
तथैव धर्मान्स्मरति मनुः कल्पांतरांतरे ॥
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे ॥ ३ ॥
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः ॥
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ ४ ॥

काशीजीमें सब मुनियोंके साहित वेदव्याजीसे श्रीपाराशरजी बोले कि हे पुत्र! तथा हे सबमुनिलोग! आप सब सुनो मैं कहताहूं, कल्प २ में चींटीसे इन्द्रपर्यंत सबका नाश होजाताहैं केवल ब्रह्मा विष्णु शिव ए ही तीनों सत्य हैं और ए ही तीनों देव वेदशास्त्रके तथा सदाचारके सर्वदा निर्णय करनेवाले हैं ॥ वेदका कार्त्ता कोई नहीं है, वेद स्वयंभू है वेदके स्मरण करनेवाले ब्रह्माजी हैं उसी ही प्रकारसे मनुजी कल्प २ में होकर धर्मको स्मरण करतेहैं। भाव कल्प २ में मनुस्मृति बनाकर धर्मोपदेश करतेहैं। सत्ययुगके धर्म भिन्न हैं, त्रेताके धर्म भिन्न हैं, द्वापरके धर्म भिन्न हैं, कलियुगके मनुष्योंके धर्म भिन्न हैं। इसी प्रकारसे युगानुसार धर्म भिन्न २ हैं। सो विस्तारसे आगे वर्णन करतेहैं। सत्ययुगमें तप है, त्रेतामें ज्ञान कहाहै ॥ १-४ ॥

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥
कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः॥५॥
द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥
त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥ ६ ॥
द्वापरे कुलमेकं तु कर्त्तारं तु कलौ युगे ॥

अर्थ-द्वापरमें यज्ञ कहाहै, कलियुगमें एक दान ही है, सत्ययुगमें मनुस्मृतिके अनुसार धर्म है। त्रेतामें गौमतस्मृतिके अनुकूल धर्म है, द्वापरमें शंख और लिखित दो स्मृतिके अनुसार धर्म है कलियुगमें

केवल पाराशरस्मृति ही प्रमाण है, इसीके अनुसार सब वर्णाश्रमधर्म होना चाहिये। सत्य युगमें दोष लगनेसे देशको त्यागे, त्रेतामेंग्रामको त्यागे, द्वापरमें कुलमात्रको त्यागे, कलियुगमें केवल कर्त्ताको त्यागे॥

कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥
द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥ ७ ॥
कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ॥
द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु ॥ ८ ॥
अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ॥
द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥ ९ ॥

अर्थ–सत्ययुगमें पापीसे बोलनेसेही पाप लगता है, त्रेतामें पापीके स्पर्श करनेसे पाप लगता है, द्वापरमें पापीके अन्न खानेसे पाप लगता है, कलियुगमें पाप करनेवालाही पतित होता है ॥ सत्ययुगमें उसी-समय शाप लगता है, त्रेतामें शाप दश दिनमें लगता है द्वापरमें एक मासमें शाप लगता है, कलियुगमें एक वर्षमें शाप लगता है ॥ सत्य-युगमें ब्राह्मणके पास जाकर दान देते हैं, त्रेतामें ब्राह्मणको बोलाकर दान देते हैं, द्वापरयुगमें मांगनेसे दान देते हैं, कलियुगमें साधु ब्राह्मणसे सेवा कराके दान देते हैं ॥ ७–९ ॥ पुनरपि–

अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् ॥
अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥ १० ॥
कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाश्रिताः ॥
द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः ॥
जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवाऽनृतेन च ॥ ११ ॥

अर्थ–ब्राह्मणोंके पास जाकर दान देना उत्तम है, बोलाकर दान देना मध्यम दान है, मांगनेपर दान देना अधम दान है, और सेवा कराके जो दान देना है वह सब वृथा है ॥ सत्ययुगमें अस्थि (हड्डी) में प्राण रहता है, त्रेतायुगमें मांसमें रहता है, द्वापरमें रुधिरमें और

कलियुगमें केवल अन्नमें प्राण है ॥ अब विशेष कलिधर्म कहते हैं कि, धर्मको अधर्म जीतलेगा, सत्यको असत्य जीतलेगा, ऐसा कलियुग विचित्र है सो गोस्वामीजीका रामायण उत्तरकाण्ड देखो ॥ १०॥११॥

जिताश्चोरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥
सीदंति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ॥ १२ ॥
कुमार्य्यश्च प्रसूयंते तस्मिन्कलियुगे सदा ॥
युगेयुगे च ये धर्मास्तत्रतत्र च ये द्विजाः ॥ १३ ॥
तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥
युगेयुगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ॥ १४ ॥

अर्थ-राजाओंको चोर जीतलेंगे, पुरुषको स्त्री जीतलेंगी, अग्निहोत्री सब दुःख पावेंगे, गुरुपूजा नाश होजायगी ॥ उस कलियुगमें कुमारी (कन्या) सदा पुत्रोंको पैदा करती है युग २ में जो धर्म है और युग २ में जो ब्राह्मण सब हैं उनकी निंदा न करना चाहिये, काहेसे कि जैसा युगानुसार धर्म न्यूनाधिक हुआ करता है उसीही प्रकारसे ब्राह्मण भी हुआ करते हैं, युग २ के अनुसार ही सब धर्म हैं और सब ब्राह्मण हैं, भाव सब भगवत्‌के आज्ञानुकूल ही धर्मोंधर्मका विधान है. इसलिये निंदा करना अयोग्य है, इस प्रकारसे युग २ के पराक्रमविशेष करके मुनियोंने वर्णन किया है ।॥१२-१४॥(प्रश्न) हे स्वामीजी ! चारों युगके स्वरूप क्या है सो कहिये । (उत्तर) हे शिष्य ! जैसा भगवत्‌के शुक्ल १ रक्त २ पीत ३ कृष्ण ४चार प्रकारके स्वरूप है उसी प्रकारसे चारों युगके स्वरूप चारों वेदके स्वरूप जानो, तहां सत्ययुग ब्राह्मण वर्ण शुक्लस्वरूप, त्रेता क्षत्रियवर्ण रक्तस्वरूप, द्वापर वैश्यवर्ण पीतस्वरूप, कलियुग शूद्रवर्ण कृष्णस्वरूप है, यथा ब्रह्माण्ड पुराणे १४ अध्याये-

ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं युगम् ॥
वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम् ॥१५॥

कृतेऽपूज्यन्त पितरस्त्रेतायां तु सुरास्तथा ॥
युद्धानि द्वापरे नित्यं पाखण्डाश्च कलौ युगे ॥१६॥
ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ १७ ॥
पुनरपि कूर्मपुराणे १९ अध्याये ॥
ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान्रविः ॥
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ॥ १८ ॥

सत्ययुग ब्राह्मण है त्रेतायुग क्षत्रिय है द्वापर वैश्य है और कलियुग शूद्रवर्ण है । सत्ययुगमें पितर लोग पूजे जाते हैं त्रेतायुगमें देवता सब द्वापरमें नित्य युद्ध हुआ करता है कलियुगमें पाषण्डी लोग पूज्य हैं॥ सत्ययुगमें ध्यान है, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ ही कहा है और कलियुगमें केवल अन्नदान प्रधान हैं । सत्ययुगके देवता ब्रह्माजी हैं, त्रेताके देव सूर्य हैं द्वापरके देव विष्णुजी है और कलियुगके देवता शिवजी हैं ॥ १९–१८ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! चारों युगोंके सृष्टिका प्रमाण और विशेष धर्म क्या है ? सो कहिये । (उत्तर) हे शिष्य ! विशेष रूपसे शांडिल्यसंहितामें कहा है सो सुनो प्रथम सत्ययुगका सृष्टिक्रम और धर्मको व्यवस्था है यथा–

आदिसृष्टौ कृतयुगे जना लक्षसमायुषः ॥
एकविंशतिहस्ताश्च स्वदैर्घ्येण महौजसः ॥ १९ ॥
सुवर्णवाससः कान्ता रत्नाभरणभूषिताः ॥
अस्थिप्राणाः स्वर्णपात्राः गव्यशुष्कफलाशिनः२०
एकपुत्रैककन्याश्च प्रायशो नियतायुषः ॥
विष्णोर्भक्ता ज्ञाननिष्ठा विप्राः कर्मठिनोऽधिकाः२१

अर्थ–महाप्रलयके बाद प्रथम सत्ययुगमें जो सृष्टि होती है उस सत्ययुगमें मनुष्योंकी एक लक्ष (लाख) वर्षकी आयु होती है और

२१ एकविंशहाथके अपने हाथसें मनुष्य दीर्घ (लम्बे) होते हैं, सुवर्णके वस्त्रोंसे सब स्त्रीरत्न भूषित रहती हैं । अस्थिमें प्राण स्वर्णके पात्र (वर्तन), सब दुग्ध घृत तथा शुष्क फलको खाते हैं। एक पुत्र एक पुत्रीवाले प्रायः सब मनुष्य होते हैं, लक्ष वर्षकी आयु नेमसे होती है, सब ब्राह्मण विष्णुभक्त और ज्ञानी तथा कर्मके अधिकारी होते हैं ॥ १९-२१ ॥

अपरेषु कृतेष्वत्र चतुःशतसमायुषः ॥
दैर्घ्येण सप्तदशहस्ताः फलगव्यान्नभोजनाः ॥ २२ ॥
अस्थिप्राणा महाप्राणाः क्षौमवल्कलवाससः ॥
तत्र स मानवो धर्मः शांता दांतास्तपस्विनः॥२३॥
स्वर्णपर्णादिपात्राश्च सर्वे यज्ञसमाश्रिताः ॥
धर्मश्चतुष्पात्तत्रासीत्स्वल्पाऽपत्याः सुवर्चसः॥२४॥
सर्वाः पतिव्रता नार्यस्सौंदर्यसुभगाश्शुभाः ॥
गुरुभक्ताः पितृभक्ता विप्राश्च यतयोऽधिकाः॥२५॥

अर्थ-प्रथम सत्ययुगके बाद जो सब सत्ययुग हुआ करता है उस सत्ययुगमें चार सौ वर्षकी आयु १७ हाथके दीर्घ सब होते हैं फल दुग्ध घृत अन्नके भोजन करते हैं। अस्थिमें महाप्राण रहता है अतसी वल्कल सब धारण करते हैं, तहां मानव (मनुस्मृति) के अनुकूल धर्म सब करते हैं, सब शांत, दाता, परोपकारी, सहनशील, तपस्वी होते हैं उस समय स्वर्णके पात्र सबको और सब कोई यज्ञके करनेवाले होतेहैं सत्ययुगमें चारों पदसे धर्म रहते हैं, अल्प पुत्र पुत्रीको पैदा करते हैं, सब तेजस्वी होते हैं । सब स्त्री पतिव्रता होती हैं, सुन्दर शुभगुणकरके युक्त होती हैं ।गुरुभक्त, पितृभक्त, सब ब्राह्मण होते हैं, और संन्यासी विशेष करके होते हैं ॥ २२-२५ ॥ हे शिष्य ! यह सब धर्म सत्ययुगके हैं, अब त्रेतायुगके धर्म कहते हैं सो सुनो यथा-

एवं त्रेतायुगे पूर्वे चतुर्दशकरा नराः ॥
वर्षाऽयुताऽयुषः सर्वे त्रयीधर्मपरायणाः ॥ २६ ॥

कौशेयवाससो दांता हेमभूषणभूषिताः ॥
मांसप्राणा रूप्यपात्राः फलगव्यान्नभोजिनः ॥२७॥
चतुःपुत्राः पवित्राश्च यज्ञेश्वरसमाश्रिताः ॥
प्रायशो भिक्षवो विप्राः शोणवर्णास्सुवर्चसः॥२८॥

अर्थ-ऐसा ही प्रथम त्रेतायुगमें सब मनुष्य १४ हाथके होते हैं और दशसहस्र वर्षकी आयु होती है, सब कोई वेदत्रयी धर्मके परायण होते हैं। सब कोई रेशमी वस्त्रको धारण करते हैं, सब कोई दाता इन्द्रियजीत स्वर्णभूषण करके भूषित मांसमें प्राण रूप्य (चांदी) के पात्र फल, दुग्ध, घृत, अन्नके भोजन करनेवाले होते हैं। चार पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं और यज्ञेश्वर भगवानके सब भक्त होते हैं, अथवा सब कोई यज्ञ करते हैं भिक्षुक नाम संन्यासी बहुत ब्राह्मण होते हैं स्वर्ण इव तेजस्वी सब गुणी बुद्धिमान् होते हैं ॥ २६-२८ ॥

अपरेषु युगेष्वत्र तृतीये त्रिशतायुषः ॥
नवहस्तमिता दैर्घ्या गौतमं धर्ममाश्रिताः ॥ २९ ॥
मांसप्राणा महाप्राणाः सरूपाश्शणवाससः ॥
वनेचराः क्षत्रियाश्च विप्राश्च योगिनोऽधिकाः॥३०॥

अर्थ-प्रथम त्रेतायुगके बाद जो त्रेतायुग होताहे उसमें तीनसौ वर्षकी आयु सबकी होतीहै और तीन पद धर्मके रहतेहैं नौ हाथके मनुष्य होतेहैं, गौतमस्मृतिके अनुकूल धर्म करतेहैं। मांसमें प्राण रहता है सुंदर स्वरूपवाले होतेहैं और शणके वस्त्र धारण करतेहैं क्षत्रिय सब वानप्रस्थ होकर वनमें वास करतेहैं, ब्राह्मण लोग प्रायः संन्यासी बहुत होतेहैं, ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे शिष्य ! ए धर्म त्रेतायुगके हैं अब द्वापरयुगके धर्म कहतेहैं सुनो-

प्रथमे द्वापरे चाथ दैर्घ्येण सप्तकरा नराः ॥
तेषां सहस्राऽब्दमायुर्वासुदेवपराश्चये ॥ ३१ ॥

आश्रिताः शंखलिखितप्रोक्तं धर्मं सनातनम् ॥
दानधर्मरतास्सर्वे द्विपाद्धर्मः प्रवर्तते ॥ ३२ ॥
महार्हवस्त्राः पीताभास्ताम्रपात्रा महर्द्धयः ॥
कृतान्नभोजिनस्सर्वे पवित्रा बहिरंतरम् ॥ ३३ ॥
बह्वपत्या महासत्त्वा असृक्प्राणास्सुपेशलाः ॥
अधिका गृहिणो वैश्यास्तथागमश्रुतिप्रियाः ॥३४॥

अर्थ–प्रथम द्वापरयुगमें ७ हाथके दीर्घ सब मनुष्य होतेहैं और एक सहस्रवर्षकी आयु होतीहै, सब लोग भगवतपरायण होतेहैं । शंख लिखित स्मृतिके अनुसार सब धर्म करतेहैं और दानधर्ममें सब तत्पर रहतेहैं, द्वापरमें धर्मको दो पद रहतेहैं दो नाश होजातेहैं । सब लोग ऊर्णावस्त्र धारण करतेहैं, पीतवर्ण सबकी कांति होतीहै, तामाके पात्र महाधन करके युक्त होतेहैं, सब कोई अन्नको भोजन करतेहैं बाहर भीतरसे पवित्र रहतेहैं । बहुतही पुत्र पैदा करतेहैं, महासत्वकरके युक्त होतेहैं रुधिरमें प्राण रहताहै, वैश्यलोग अधिक गृहस्थ होतेहैं तथा वेद शास्त्र जिनको विशेष प्रिय लगतेहैं ॥ ३१–३४ ॥ अब अन्यद्वापरके धर्म कहतेहैं–

अन्येष्वेषु युगेष्वत्र पञ्चहस्तमिता नराः ॥
द्विशताब्दायुषः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः ॥ ३५ ॥
भक्ता हरेर्हरस्यापि तूलरोमादिवाससः ॥
तथा पित्तलपात्राश्च स्वर्णपात्रा गृहाश्रमाः ॥ ३६॥
स्वर्णरूप्यविभूषाश्च वीर्यवंतो यशस्विनः ॥
मानार्थिनो मानदाश्च अनुलोमांगनोद्वहः ॥ ३७॥

अर्थ–प्रथम द्वापरके बाद जो द्वापरयुग होतेहैं उन द्वापरयुगमें सब मनुष्य ५ हाथके होतेहैं, दो सौ वर्षकी सबकी आयु होतीहै और

सब धर्मात्मा होतेहैं । विष्णुके और शिवके भक्त होतेहैं, सूत रोम ऊण कंबलादिक धारण करतेहैं, तथा पित्तल स्वर्णके पात्र रखतेहैं और गृहस्थ विशेष होतेहैं, त्यागी कम होतेहैं, सोने चान्दीके भूषण विशेष होतेहैं सब वीर्यवान् यशस्वी होतेहैं और मानके चाहनेवाले, मानके देनेवाले सब होजातेहैं तथा अनुलोम अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियोंकी पुत्रीसे विवाह करलेतेहैं और क्षत्रिय वैश्यके पुत्रीसे, वैश्य शूद्रकी पुत्रीसे विवाह करलेतेहैं ॥ ३५–३७ ॥ हे शिष्य ! ए सब धर्म द्वापरके हैं अब कलियुगके धर्म सुनो यथा–

तिष्ये च प्रथमे सृष्टेर्जनाः सर्वे शतायुषः ॥
दैर्घ्येण पञ्चहस्ताश्च चतुर्हस्तांगना नराः ॥ ३८ ॥
अन्नाऽभावान्मांसभुजो वस्त्राभावाच्छदांशुकाः ॥
पात्राऽभावात्पर्णपात्रा मृत्पात्राश्च विशेषतः ॥३९॥
सर्वत्रगामिनो दुष्टा उद्वाहादिक्रियोज्झिताः ॥
स्वल्पसंस्कारधर्माश्च आगमैकपरायणाः ॥ ४० ॥
सर्वदोषाकराश्चैव गुणैः सर्वैर्विवर्जिताः ॥
एवंभूतकलावाद्यैर्नार्यः सर्वाहतव्रताः ॥ ४१ ॥

अर्थ–सृष्टिके प्रथम कलियुगमें सब मनुष्योंकी सौ वर्षकी आयु होती है दीर्घ (ऊंचा) पांच हाथके होतेहै और स्त्रियां सब भी चार हाथकी होथीहै ॥ अन्नके न मिलनेसे मांस खातेहै तथा वस्त्रके न मिलनेसे पत्र ही धारण करतेहैं, पात्रके न मिलनेसे पत्रोंके पांत्र (दोना) आदिपात्रमें काम करतेहै और मृत्तिका (मिट्टी) के पात्रतो विशेष करके होते हैं, जैसा मिथिलाप्रांत भागलपुर मुंगेर जिलामें प्रसिद्ध है ॥ सर्वत्र जो व्यभिचार करतीहै उनहीके साथमें क्रियाकर्मको छोडकर विवाहादि न करके रखलेंगे संस्कारकर्म और धर्म बहुत ही थोडा होजाताहै, केवल एक शास्त्र अर्थात् कलौ पाराशराः स्मृता ॥

इस प्रमाणसे पाराशरस्मृतिके कहे धर्मको करते है ॥ कलियुगमें सब दोषोंके खानि और सब गुणसे रहित सब मनुष्य होजातेहैं तथा स्त्री पातिव्रतसे नष्ट होजाती है ॥ ३८-४१ ॥ ऐसा कलियुग प्रथम होगया अब अन्य कलियुगके धर्म सुनो यथा-

अपरेषु च तिष्येषु नराः स्वल्पायुषो मताः ॥
स्वल्पकायाः स्वल्पधना मन्दभाग्याश्च रोगिणः ४२
निगमागमधर्मेषु येषां नैव दृढा मतिः ॥
परपाकभुजः सर्वे पशुमांसभुजः खलाः ॥ ४३ ॥
मद्यमांसांगनाद्यूतपराः स्थलपरास्तथा ॥
वर्णाश्रमाभिमानाश्च तत्तत्कर्मविवर्जिताः ॥ ४४ ॥
धनिनो निर्धनाः पूर्वैः संकीर्णो युगधर्मतः ॥
शिश्नोदरपराः सर्वे कदपत्याः कदंगनाः ॥
एवं सामान्यतः प्रोक्तं युगानां रूपमीदृशम् ॥ ४५ ॥

अर्थ-और सब कलियुगमें सब मनुष्योंकी स्वल्प आयु स्वल्प शरीर स्वल्प धन होता है और मंदभाग्यवाले होते हैं सब रोगी होते हैं ॥ वेद शास्त्रमें जिनकी दृढ बुद्धि नहीं होती है थोरही कहने सुननेसे वेदशास्त्रकी मर्यादा छोड पाषण्डी नास्तिक होजाते हैं और सबके हाथोंकी भोजन करते हैं भाव सर्वभक्षी होजाते हैं, दुष्टपशुके मांसको खाते हैं ॥ मद्य मांस द्यूत (जूआ) परस्त्री वेश्यासाक्ति इन कामोंमें रात्रिदिन मगन रहते हैं और जहां भगवतकथा होती है तहां भूलकर भी न जायंगे ऐसे पापी दुष्ट होते हैं ॥ दूसरेकी धन स्थान स्त्री लेलेते हैं । मिथ्या-साक्षी देते हैं ॥ वर्णाश्रमके बड़े अभिमानी होते हैं, परंतु वर्णाश्रमके कर्म तो बिलकुल जानते भी नहीं हैं, केवल पाषण्ड धर्मको ही विशेष जानते हैं ॥ धनी भी निर्धन होजाते हैं युगकी कठिनतासे सब कोई इन्द्रियोंके लिये और पेटके लिये ही रात्रिदिन श्वानकी तरह मारे २ घूमते हैं ॥ दुष्ट, काने, खोढे, लंगड़े, लूले, गूंगे, पुत्र तथा दुष्टा स्त्री

शंखिनी दरिद्राके साथ विवाह होता है, भाव दुष्ट स्त्रीसे शादी होती है तो दुष्टही पुत्रादिक जन्म लेते हैं ॥ हे शिष्य ! इसप्रकार सामान्यसे चारों युगोंका धर्म कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है सो कहो ॥ ॥ ४२-४५ ॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी ! अब चौरासी लक्ष योनिके लक्षण व प्रमाण कहिये । (उत्तर) हे शिष्य ! मन देकर सुनो-

स्थावरं विंशतिर्लक्षं जलजं नवलक्षकम् ॥
क्रिमिश्च रुद्रलक्षं च दशलक्षं च पक्षिणः ॥ ४६ ॥
त्रिंशल्लक्षं पशूनां च चतुर्लक्षं च वानराः ॥
ततः मनुष्यतां प्राप्य ततः कर्माणि साधयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-स्थावर योनि २० लक्ष, जलके वासी जीव नौ ९ लक्ष, और क्रिमियोनि ११ ग्यारहलक्ष है, दश १० लक्ष पक्षीयोनि है ॥ तीस ३० लक्ष योनि पशुकी है, चार ४ लक्ष वानरोंकी योनि है, वानरयोनिके बाद मनुष्यशरीर मिलता है, तब शुभाशुभ कर्मोंके साधन करते हैं ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे शिष्य ! मनुष्यदेह सबसे उत्तम है, और साधनका धाम है । यथा साधनधाम मोक्षके द्वारा पुनरपि-

यथा माला शिरोभागोल्लंघनात्पुनरुद्भ्रमः ॥
तथैव नरदेहस्य वियोगाद्योनिसंभ्रमः ॥ ४८ ॥
मंदिरान्ताद्विनिर्गंतु यथा गोपुरनिर्मितिः ॥
योनिमण्डलनिःसृत्यै नरदेहदेहली तथा ॥ ४९ ॥

अर्थ-जैसे माला फेरतेसमय सुमेर उलंघन करनेसे फिर माला फेरनी परतीहै तैसे ही मनुष्य शरीरत्यागनेसे फिर चौरासी लक्ष योनिमें भ्रमण करना परता है ॥ पुनः जैसे मंदिरसे निकलनेके लिये दरवाजा निर्माण करतेहै उसी ही प्रकारसे चौरासी लक्ष योनिसे निकसनेके वा ते मनुष्य देह प्रभुने दरवाजा बनायीहै जिसकी इच्छा हो सो

मनुष्यदेह पाकर संसारसे निकलजावे नहीं तो निकलना दुस्तर है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे शिष्य ? मनुष्यदेहमें भी दश भेद हैं यथागमे ॥

देवो जातः क्षमावन्तो गन्धर्वो मधुरस्वरः ॥
मानुषो मतिचातुर्य्यः पिशाचो मतिनिर्गुणः ॥५०॥
यक्षस्य च भयं नास्ति राक्षसो उग्रतामसः ॥
खरश्च वाकभ्रष्टश्च मृगश्च मतिकातरः ॥ ५१ ॥
मर्कटो मतिचाञ्चल्यः सर्वभक्षी च वायसः ॥
एवं जातिमनुष्येषु देशभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ५२ ॥

अर्थ–क्षमावंत पुरुष देवता हैं। मधुर स्वरवाला गंधर्व है। चतुर बुद्धिमान मनुष्य है। निर्गुण याने सर्वगुणवर्जित पिशाच है। जिसको डर नहीं है वह यक्ष है। घोर तामसी मनुष्य राक्षस है। जिनका स्वर ठीक नहींहै वह खर (गदहा) है कादर बुद्धिवाले मृग है ! चंचल बुद्धिवाले वानर। सर्व भक्षी याने मछरी, मांस, लहसुन, पियाज, गाजर, गोभी, शलगम, सोवा, पलाकी, कलिंग, (तरबूजा) गांजा, भंग, तमाखू आदिक जो अभक्ष्यको भक्षणकरे वही मनुष्य वायस (कौवा) है इस प्रकारसे मनुष्यजातिमें दश भेद कहे है ॥५०-५२॥ (प्रश्न) हे स्वामीजी इस महाघोर कलिकालमें मुख्य साधन क्या है सो कहिये (उत्तर) हे शिष्य गोस्वामी तुलसीदासजीसे अंतसमयमें काशीवासीनें प्रार्थना कियी कि कुछ अंतिम उपदेश करिये,तब गोस्वामीजी बोले–

कवित्त।

अलप तो अवधि जीव तामें बहु सोच पोच,
करिवोको बहुत है काह काह कीजिये ॥ पार
न पुरानहुंको वेदहुंको अन्त नाहि, वानी तो

अनेकन चित्त कहँ कहँ दीजिये ॥ काव्यको कला अनंत छंदको प्रबन्ध बहु रागतो हैं रसीले रस कहँ कहँ पीजिये ॥ तुलसी सब बातोंकी एकही बतायजात जनम जो सुधारा च हैं राम नाम लीजिये ॥

दोहा ।

नाम लिया जिन सब लिया, छओ शास्त्रके भेद ॥
नाम विना नरकहिं गये, पढिपढि चारिहु वेद ॥
रामनाम अवलम्ब बिनु, परमारथकी आस ॥
वरषत वारिदबुंद गहि, चाहत बढन अकास ॥
नाम रामको अंक है, सब सोधन है सून ॥
अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दसगून ॥

इति श्रीमदयोध्यावासिना वैष्णवसाधुश्रीसरयूदासेन विरचिते श्रीवैष्णवकुलभूषणसारसंग्रहे गुरुशिष्यसंवादे भाषाटीकायां चतुर्युगांतर्धर्मवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समाप्तोऽयं वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रहः ॥

पुस्तक मिलनेका पता—
श्रीसरयूदासजी माहाराज.
कनकभवन—अयोध्या.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना—बंबई